विराट

[भारतीय पृष्ठभूमि पर एक विदेशी उपन्यास]

मूल लेखक
स्टीफन ज्विग

अनुवादक
यशपाल जैन

हिन्द साहित्य प्रकाशन
अजमेर

अनुवादक की ओर से

सन् '४० की बात है। अक्तूबर के मध्य में टीकमगढ़ पहुँचा तो एक दिन श्रद्धेय पं० बनारसीदास चतुर्वेदी ने एक छोटी-सी पुस्तक पढ़ने को दी। किसी विदेशी लेखक का कोई सवा-सौ पृष्ठ का उपन्यास था। पुस्तक और उसके प्रणेता का नाम मेरे लिए एकदम नया था। विशेष उत्साह न होते हुए भी किताब पढ़नी शुरू की। एक पन्ना पलटा कि फिर उसे छोड़ना मुश्किल हो गया और सारी पुस्तक एक सांस में पढ़ गया। उसमें एक नारी का सहज-स्वाभाविक भावनाओं का इतने मार्मिक ढंग से चित्रण किया गया था कि कोई भी पाठक उसपर बिना चकित हुए रह नहीं सकता था। यह कृति थी : ए लैटर फ्रॉम एन अननोन वूमेन' (अज्ञात नारी का पत्र) और लेखक थे स्टीफ़न ज़्विग।

ज़्विग से यही मेरा प्रथम परिचय था। उसके बाद तो फिर उनकी जितनी पुस्तकें मिल सकीं, पढ़ीं और उनकी कला के प्रति मेरे मन में प्रशंसा के भाव उत्तरोत्तर बढ़ते ही गये। कविता, कहानी, उपन्यास, जीवन-चरित, रेखा-चित्र, नाटक गर्जेकि साहित्य का कोई भी ऐसा अंग नहीं था, जिसे उन्होंने न छुआ हो और जिसमें उन्होंने कमाल न कर दिखाया हो। यहूदी होने के कारण ज़्विग ने अपने जीवन में भारी विपत्तियों का सामना किया था। फलतः उन्हें इतनी गहरी अनुभूतियाँ प्राप्त

हो गई थीं, जिनके बिना कोई भी व्यक्ति सफल कलाकार हो नहीं सकता। ज्विग की इस अनुभूतियों से उनके सूक्ष्म अन्वेषण उनकी दुखियों के प्रति सहानुभूति तथा उनके अन्य मानवीय गुणों का परिचय मिलता है और यही अनुभूतियाँ उनकी रचनाओं में जान डाल देती हैं।

'विराट' ज्विग की विशेष कृति है, कारण कि उसकी पृष्ठभूमि भारतीय है। लगभग चालीस वर्ष पूर्व ज्विग भारत पधारे थे। भारतीय विचार-धारा के प्रति उनकी विशेष रुचि थी और उससे वे प्रभावित भी थे। पाठकों को यह जानकर हर्ष होगा कि प्रस्तुत उपन्यास का यह नाम स्वयं ग्रन्थकार का दिया हुआ है। प्रारम्भ में उन्होंने गीता के इन श्लोकों का अंग्रेजी उल्था दिया है:

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।

(अध्याय ३, श्लोक ५)

—कोई भी मनुष्य कर्म किये बिना क्षण भर भी नहीं रह सकता। प्रकृति के गुण प्रत्येक परतंत्र मनुष्य को सदा कुछ-न-कुछ कर्म करने में लगाये ही रखते हैं।

किं कर्म किमकर्मेति...

यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्।

(अध्याय ४, श्लोक १६)

—(इस विषय में बड़े-बड़े विद्वानों को भी भ्रम हो जाता है कि) कौन कर्म है, कौन अकर्म। (अतः वैसा कर्म तुझे बतलाता हूं, जिसके) जान लेने से तू पाप-मुक्त हो जायगा।

इसी सिद्धान्त पर ज्विग ने अपने इस 'विराट' उपन्यास को आधारित किया है। यदि कोई व्यक्ति निष्कर्मता का साधन करना चाहे तो वह इस संसार में कदापि संभव नहीं। कर्म से बचाव हो नहीं सकता। इसलिए आदमी को चाहिए कि वह बिना फल में आसक्ति रक्खे कर्म करे। विराट अपने जीवन में कर्म से छुट-

कारा चाहता है। वह सोचता है कि कर्म परिणाम लाता है और उसका प्रभाव दूसरों पर पड़े बिना रह नहीं सकता। पाप-मुक्त होने के लिए आवश्यक है कि आदमी कर्म-मुक्त हो। लेकिन जीवन-भर प्रयत्न करने पर भी कर्म के बन्धन से वह छूट नहीं पाता। उसके जीवन में कितने उतार-चढ़ाव आते हैं, कितने कष्ट उसे भोगने पड़ते हैं; पर अंत में वह इसी नतीजे पर पहुँचता है कि आदमी बिना फल की अभिलाषा किये अपना काम करता रहे, इसी में उसका कल्याण है। उपन्यास के पात्र, कथानक, विचार-धारा, वातावरण सब कुछ भारतीय है और उसे पढ़ कर पाठक को कहीं भी ऐसा नहीं लगता कि उसका लेखक विदेशी है। भारतीयता के रङ्ग में सराबोर होकर ही कोई कलाकार ऐसे सफल उपन्यास की रचना कर सकता था। निस्संदेह 'विराट' ज़्विग की अपूर्व कृति है।

विदेशी कलाकारों के बहुत-से ग्रन्थों का अनुवाद भारतीय भाषाओं में हुआ है; लेकिन स्टीफ़न ज़्विग की रचनाओं के अनुवाद की ओर अभी विशेष ध्यान नहीं दिया गया। जिसकी पुस्तकों के विश्व की इकत्तीस भाषाओं में अनुवाद हुए हों, उसकी लोकप्रियता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। हमें विश्वास है कि ज़्विग की रचनाओं के अनुवाद शीघ्र ही भारतीय भाषाओं में प्रकाशित होंगे। हम चाहते हैं कि उनके आत्म-चरित 'दी वर्ल्ड ऑव यस्टरडे' (कल की दुनिया) का अनुवाद तो जितनी जल्दी प्रकाशित हो सके अच्छा है। लेखकों के लिए यह ग्रन्थ बड़ा ही उपयोगी और प्रेरणादायक है।

'विराट' का अनुवाद कराने का श्रेय सोलहो आने दादाजी (पं० बनारसीदास चतुर्वेदी) को है। उन्होंने निरन्तर आग्रह न किया होता तो शायद ही अनुवाद हो पाता। उन्होंने बार-बार अनुरोध करके अनुवाद कराया और धारावाहिक रूप में उसे

'मधुकर' में प्रकाशित भी किया। पर इसके लिए शब्दों में उनका आभार स्वीकार करना धृष्टता होगी। अनुवाद में यदि कोई त्रुटि रह गई हो तो उसके लिए अनुवादक दोषी है; पर इतना विश्वास वह अवश्य दिला देना चाहता है कि उसे इस बात की निरन्तर चिन्ता रही है कि कहीं मूल लेखक के भावों के साथ अन्याय न हो और तदर्थ वह ईमानदारी के साथ सजग भी रहा है। पाठकों को पुस्तक पसन्द आई तो इससे उसे सन्तोष होगा और हर्ष भी।

द्वितीय स्वतंत्रता-दिवस-पर्व
१५ अगस्त १९४८
७।८, दरियागंज,
दिल्ली

—यशपाल जैन

भूमिका

स्टीफन ज़्विग एक असाधारण प्रतिभाशाली व्यक्ति थे। उनकी प्रथम रचना सन् १६०१ में प्रकाशित हुई थी और अंतिम रचना (बालज़क का जीवन-चरित) अभी सन् १६४८ में छपी है। उनका देहान्त फर्वरी सन् १६४२ में हुआ था। जो व्यक्ति निरन्तर ४१ वर्ष तक अत्यन्त श्रद्धा-पूर्वक सरस्वती की आराधना करता रहा, बड़े-से-बड़े प्रलोभन भी जिसे अपने निर्दिष्ट पथ से अलग न कर सके, जिसने काव्य, कहानी, नाटक, आलोचना, जीवनचरित तथा उपन्यास इत्यादि क्षेत्रों में समान रूप से सफलता प्राप्त की, जिसकी गणना विश्व के सर्वश्रेष्ठ ग्रन्थकारों में की गई और जिसे रोमाँ रोलाँ और गोर्की जैसे महान् कलाकार अपना समकक्ष मानते रहे, ऐसे अमर साहित्य-स्रष्टा की रचनाओं पर एक विहंगम दृष्टि डालना, उनका यथोचित मूल्यांकन करना किसी विद्वान लेखक का ही काम हो सकता है, जिसने उन सम्पूर्ण साहित्य का मूल में अध्ययन किया हो, जो विदेशी साहित्य की विविध धाराओं से सुपरिचित हो और जो स्वयं भी एक उच्च कोटि का कलाकार हो। खेद है कि इन पंक्तियों के लेखक में ऐसी कोई योग्यता नाममात्र को भी नहीं है। इसलिए वह ज़्विग के एक भक्त की हैसियत से ही दो-चार शब्द लिख सकता है।

यदि हमसे पूछा जाय कि ज़्विग की रचनाओं में हमें कौनसी चीज़ पसन्द आई तो हमारा यही उत्तर होगा कि उनका साहित्यिक व्यक्तित्व—मनुष्यता जिसका निरन्तर विकास उन्होंने अपनी अनन्त

साधना द्वारा किया था। किसी हिन्दी कवि के कथनानुसार प्रेम का अर्थ 'तरवार की धार पै धावनौ है' और ज्विग की यह विशेषता थी कि वे एक कुशल नट की तरह इकतालीस वर्ष तक अचूक सावधानी और अडिग निश्चय से अपने साहित्यिक योग में डटे रहें। मनुष्य के गुण-दोष उसकी रचनाओं में चित्रित हो जाते हैं और एक कुशल पारखी के लिये किसी सृष्टा की रचनाओं में उसकी आत्मा का दर्शन कर लेना कोई मुश्किल बात नहीं। यद्यपि यह संभव है कि कुछ लेखकों का व्यक्तित्व उनकी रचनाओं से मेल न खाता हो, वे अपनी रचनाओं से तटस्थ रहे हों अथवा उनका आचरण उनके प्रकाशित विचारों से बिल्कुल विपरीत रहा हो, तथापि यह नामुमकिन है कि कोई कलाकार अपने आपको बिल्कुल ही छिपा सके। कहीं-न-कहीं का एक वाक्य अथवा एक शब्द ही उसकी अन्तरात्मा के सौन्दर्य अथवा कुरूपता को घोषित करने के लिये पर्य्याप्त होगा, ठीक उसी प्रकार जिस तरह अंगूठे की निशानी या पैर के चिह्न से कोई चोर या खूनी पकड़ा जा सकता है!

गत चौदह-पन्द्रह वर्षों से हम स्टीफन ज्विग की रचनाओं का विशेष रूप से अध्ययन करते आये हैं, कइयों को हमने अनेक बार पढ़ा है, सुनाया है और अपने साथियों को पढ़ने के लिये प्रोत्साहित भी किया है। ज्विग का आत्म-चरित 'कल की दुनिया' (The World of Yesterday) हमारा एक प्रिय ग्रन्थ है और उनकी प्रथम पत्नी द्वारा लिखे हुए उनके जीवन-चरित (Stefan Zweig by Friderike Zweig) का हमने विधिवत् अध्ययन किया है। इस दीर्घ परिचय के बाद हम यही कह सकते हैं कि ज्विग अपनी रचनाओं में पूर्ण रूप से तथा ईमानदारी के साथ विद्यमान हैं और अपनी रचना के साथ तादात्म्य ही उनकी सब से बड़ी सफलता है।

ज्विग की रचनाओं में 'विराट' हमें बहुत पसन्द आया है, केवल इसी कारण नहीं कि उसकी पृष्ठभूमि भारतीय है, बल्कि इस वजह से भी कि उसमें उन्होंने अपनी ही आत्मा को चित्रित कर दिया है।

हमें उस दिन की याद कभी न भूलेगी जब हमने 'विराट' को पहली बार पढ़ा था। प्रारम्भ से अन्त तक हम मंत्र-मुग्ध से बने रहे और कहानी समाप्त होने पर हमारे मुँह से सहसा यही शब्द निकल पड़े, "यह तो एक सुन्दर काव्य है।" तत्पश्चात् हमने इतनी बार इस कथा को अपने मित्रों तथा साथियों को पढ़-पढ़कर सुनाया कि वह हमें कण्ठस्थ-सी हो गई! हम इस कहानी का अनुवाद स्वयं ही करना चाहते थे, पर अपनी दीर्घ-सूत्रता के कारण ऐसा न कर सके! सौभाग्य की बात है कि इस शुभ कार्य को हमारे सुयोग्य सहायक और सहृदय बन्धु श्रीयुत यशपालजी ने बड़ी सफलता-पूर्वक कर दिया है और इसके लिये हम उनके अत्यन्त कृतज्ञ हैं।

'विराट' के विषय में ज्विग की सुयोग्य पत्नी ने, जो स्वयं बड़ी अच्छी लेखिका हैं, लिखा है, "विराट के चरित्र में और स्टीफन ज्विग के चरित्र में एक प्रकार का भ्रातृत्व तथा ऐक्य विद्यमान है।" मानो इस उपाख्यान के बहाने उन्होंने अपनी अन्तरात्मा को ही प्रतिबिम्बित कर दिया है--बकौल किसी उर्दू कवि 'काग़ज़ पै रख दिया है कलेजा निकालकर।'

श्रीमती ज्विग 'विराट' के विषय में लिखती हैं:

"Man in his blindness, not knowing whom he strikes and judges, should judge not and strike not. This is the meaning of Zweig's timeless, ever recurring melody".

"कोई मनुष्य जब किसी पर चोट करता है अथवा उसके जुर्म के विषय में फैसला देता है तो उसे अपने अन्धेपन में यह प्रतीत नहीं होता कि चोट किस पर पड़ रही है और किसका भाग्य-निर्णय वह कर रहा है, इसलिए उसे इस काम को तिलांजलि ही दे देनी चाहिये। ज्विग की रचनाओं में निरन्तर इसी राग की ध्वनि सुनाई पड़ती है।"

'विराट' के कुछ वाक्य तो इतने बढ़िया बन पड़े हैं कि उन्हें सदूक्तियों के संग्रह में स्थान मिलना चाहिये, यथा :

' संतों के एकान्तवास की अपेक्षा कहीं अधिक सचाई दुःख की एक सिसकी में है ।'' (पृष्ठ ६९)

''जो शासन करता है, वह दूसरों की स्वतन्त्रता का तो अपहरण करता ही है; लेकिन सब से बुरी बात तो यह है कि वह स्वयं अपनी आत्मा को गुलाम बनाता है।'' (पृष्ठ ५६)

''मैं किसी का भाग्य-विधाता नहीं बनूंगा। जो भी कोई दूसरे के भाग्य का फैसला करता है वह अपराधी है।'' (पृष्ठ ५४)

' यह हो सकता है कि आदमी की निगाह में एक सेवा दूसरी से बड़ी दिखाई दे, लेकिन परमात्मा की निगाह में सब सेवाएं समान हैं।'' (पृष्ठ ७४)

''मुझे जो सीख मिली है वह अभागों से मिली है। मुझे जो कुछ दीखा है, उसका दर्शन दुखियों की निगाह ने कराया है।'' (पृष्ठ ६१)

''जिसका कोई घर-बार नहीं, उसी की सारी दुनिया घर है। जिसने जीवन के बन्धनों को काट डाला है, उसी के हिस्से में सच्चा जीवन आया है।'' (पृष्ठ ६२)

''कोई भी किसी के बारे में निर्णय देने का अधिकारी नहीं है।... दण्ड देना परमात्मा के हाथ की बात है, ईश्वर के हाथ की नहीं।'' (पृष्ठ ४५)

ज्विग के लिए ये वाक्य कोरमकोर सिद्धांत ही नहीं थे, वे व्यवहार में भी उनका प्रयोग करते थे। एक बार एक चोर पेरिस में होटल से उनका सन्दूक उठा ले गया। वह पकड़ा भी गया। ज्विग को भी कचहरी में जाना पड़ा। जब पुलिस अफसर ने पूछा, ''आप इस चोर के खिलाफ़ मुकदमा दायर करेंगे?'' तो आपने तुरन्त उत्तर दिया, ''हर्गिज नहीं।'' परिणाम क्या हुआ, उसे ज्विग के शब्दों में सुन लीजिये :

''ज्योंही मैंने कहा 'हर्गिज़ नहीं' त्योंही उसकी प्रतिक्रिया तीन

व्यक्तियों पर तीन तरह से हुई। चोर के, (जो विचारा दो पुलिसमैनों के हाथ में भौंचक्का-सा खड़ा हुआ था) चहरे पर कृतज्ञता का जो भाव उदित हुआ वह अवर्णनीय है और उसे मैं ज़िन्दगी भर नहीं भूल सकता। पुलिस अफसर ने सन्तोष-पूर्वक अपनी क़लम रखदी। उसने सोचा कि चलो, मामला यों ही निपट गया, अब व्यर्थ ही पन्ने न रंगने पड़ेंगे; लेकिन मेरे मकान-मालिक का तो चेहरा ही पीला पड़ गया। वह मुझ पर अत्यंत क्रुद्ध हुआ और चिल्ला-चिल्लाकर कहने लगा—"यह तुम कर क्या रहे हो? इन धूर्तों का तो खातमा ही कर देना चाहिये। तुम नहीं जानते कि इन जूओं के मारे सैकड़ों भले आदमियों की नींद हराम होती है। इस तरह एक चोर को छोड़ देने से तो जनाब, सैकड़ों चोरों को प्रोत्साहन मिलेगा। आप अपनी 'माफी' को वापस लीजिये।" इत्यादि इत्यादि।

ज्विग ने दृढ़ता-पूर्वक उत्तर दिया, "मेरी चीज़ मुझे वापस मिल गई। मैं इस पर मुकदमा कदापि नहीं चलाऊँगा।"

ज्विग लिखते हैं, "मैंने अपनी ज़िन्दगी में कभी किसी पर भी अभियोग नहीं लगाया था और इस ख़याल से कि आज मेरी वजह से किसी को मजबूरन जेल का खाना नहीं खाना पड़ेगा, मैं और भी स्वाद से अपना भोजन करूँगा।"

ज्योंही ज्विग ने अपना सन्दूक लेने के लिए हाथ बढ़ाया कि वह चोर आगे बढ़कर विनम्रता-पूर्वक बोला, "अरे, नहीं जनाब, यह हो नहीं सकता, मैं ख़ुद इसे आपके घर तक ले चलूँगा।" ज्विग लिखते हैं, "इस प्रकार मैं सड़क पर आगे-आगे चल रहा था और वह कृतज्ञ चोर उस भारी बोझ को लादे हुए मेरे होटल तक पीछे-पीछे।"

मनोभावनाओं के सूक्ष्मातिसूक्ष्म विश्लेषण में ज्विग का मुक़ाबला करने वाले लेखक बिरले ही होंगे। इतिहास की सूखी हड्डियों में जान डाल देना तो उनके बाँए हाथ का खेल था। उनमें एक अद्भुत मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि थी। उनकी पुस्तक 'मेरी इण्टोइनिटी (Marie

Antoinette) पर एक प्रसिद्ध फिल्म बनी थी। उक्त फिल्म की आलोचना करते हुए फरवरी सन् १९३९ की 'क्विवर' नामक पत्रिका में एक अलोचक ने लिखा था :

"आप इस फिल्म को ज़रूर देखें, पर साथ ही मैं इतना और भी कहूँगा कि आप स्टीफन ज्विग की किताब को भी पढ़ें और बार-बार पढ़ें और तब यह बात आपको स्पष्ट हो जायगी कि एक अकेला ग्रन्थकार अपने पाठ-भवन में बैठकर धैर्य-पूर्वक और ईमानदारी के साथ जैसा सजीव चित्र बना सकता है वैसा बढ़िया चित्र हॉलीवुड के या दुनिया के तमाम ऐक्टर और ऐक्ट्रेस हज़ारों पौण्ड खर्च करके भी नहीं बना सकते।"

'ट्रांसफ़िगरेशन' (रूप-परिवर्तन) ज्विग की एक अत्युत्तम कहानी है, जो कला की दृष्टि से सम्भवतः 'विराट' से भी बढ़कर होगी। उसके कुछ वाक्य सुन लीजिये :

"दानशीलता के आनन्द ने—दोनों हाथों से अपनी सम्पत्ति को लुटाकर प्रफुल्लित होने की भावना ने—समस्त विश्व से मेरा रिश्ता जोड़ दिया था और तब मैंने सोचा, आनन्द देना और आनन्द लेना कितना आसान है! उन लोहे के तख़्तों को ऊपर उठा देना भर काफ़ी है, जो मनुष्य और मनुष्य के बीच में बाधा के रूप में विद्यमान हैं और उन तख्तों के उठते ही जीवन की धारा मनुष्य से मनुष्य की ओर प्रवाहित होना प्रारम्भ हो जाती है। ऊपर से तुमुल-ध्वनि करती हुई वह नीचे की ओर गिरती है और फिर नीचे से उसकी फुहार उठकर अनन्त की ओर जाने लगती है।"

"चाँदी के कुछ सिक्कों से अथवा रंगीन काग़ज़ के कुछ टुकड़ों (नोटों) से दूसरों की चिन्ताओं को ख़तम कर देना और आनन्द को वितरित करना कितना सरल है।"

"जीवन को वही समझता है, जो प्रेम करता है और जो दान करता है।"

ऐसा प्रतीत होता है कि उपयुक्त वाक्य ज्विग के जीवन के मोटो (आदर्श वाक्य) थे और तदनुसार उन्होंने अपने व्यक्तित्व का निर्माण भी किया था।

नवयुवक लेखकों को प्रोत्साहित करना—छुटभइयों का मार्ग-प्रदर्शक बनना—ज्विग के जीवन का एक मुख्य कार्य था और एतदर्थ उन्होंने अपना बहुत कुछ समय, शक्ति तथा धन भी व्यय किया था।

उनके एक मित्र वरफेल (Werfel) ने लिखा था—"There is no other writer living who helps his friends with such generosity and munificence"—अर्थात् "ज्विग की तरह उदारतापूर्वक तथा मुक्तहस्त से अपने मित्रों की सहायता करने वाला दूसरा कोई लेखक विद्यमान नहीं।"

स्वर्गीय साहित्य-सेवियों को श्रद्धाञ्जलि अर्पित करना अथवा साहित्यिक अग्रजों का गुणगान करना तो मानों ज्विग के हिस्से में ही आया था। उनके लिखे हुए महत्त्व-पूर्ण जीवन-चरित इस बात के प्रमाण हैं। रोमां रोलां की सर्वोत्तम जीवनी उन्हीं के द्वारा लिखी गई थी और टाल्स्टाय के चरित्र का विश्लेषण उन्होंने बड़ी खूबी के साथ किया है। सुप्रसिद्ध फरांसीसी लेखक बालज़क के जीवन-चरित में उन्होंने आठ वर्ष लगा दिये थे।

क्या निजी और क्या राष्ट्रीय, क्या साहित्यिक अथवा क्या अन्तर्राष्ट्रीय, सभी व्यवहारों में ज्विग एक मनुष्य थे और मनुष्यता की रक्षा करना, मानवता को पाशविकता के आक्रमण से बचाना—यही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। अपने अन्तिम पत्र में उन्होंने लिखा था, "मुझे बौद्धिक परिश्रम से ही सबसे अधिक आनन्द मिला है और मैंने व्यक्तिगत स्वाधीनता को ही संसार की सर्वोत्तम वस्तु समझा है।"

उनके बौद्धिक परिश्रम की कल्पना इसीसे की जा सकती है कि उन्होंने अपने जीवन में दो लाख पृष्ठ लिखे थे और अपनी रचनाओं

को संक्षिप्त करने तथा उनमें प्रवाह लाने की धुन में उन्होंने कम-से-कम आठ लाख पृष्ठ लिखकर फाड़ फेंके थे। और व्यक्तिगत स्वाधीनता की रक्षा के लिये उन्होंने क्या-क्या कष्ट नहीं सहे? अधिक क्या कहा जाय, उसीकी रक्षा के लिये उन्होंने अपने प्राण तक दे दिये! उन्होंने कभी किसी की गुलामी नहीं की। आस्ट्रियन सरकार उन्हें अपना राजदूत बनाकर विदेश भेजना चाहती थी, पर उन्होंने उस गौरव को तुच्छ ही समझा।

मनुष्य-मात्र में त्रुटियाँ पाई जाती हैं। ज्विग में भी वे अवश्यमेव रही होंगी। वे देवता नहीं थे और न किसी को देवत्त्व प्रदान करना उन्हें प्रिय था।

"Not to deify but to humanize, is the supreme task of creative psychological study"[1] ज्विग का यह वाक्य प्रत्येक चरित-लेखक के लिये आदर्श है।

जो गुण ज्विग की रचनाओं को विशेषता प्रदान करते हैं उनमें मुख्य है उनकी मनुष्यता और तत्पश्चात् उनकी अनुभूतियों की विविधता। जब उन्हें पिछले युद्ध में इंग्लैण्ड छोड़कर आस्ट्रिया लौटना पड़ा था, उस समय का वर्णन करते हुए वे आत्म-चरित के अन्त में लिखते हैं—

"सूर्य पूर्णता तथा उज्ज्वलता के साथ अपनी किरणें फैला रहा था। घर को लौटते हुए मुझे स्वयं अपनी छाया सामने दीख पड़ी, ठीक उसी प्रकार जिस तरह सन् १९१४ के महायुद्ध की छाया मुझे इस नवीन युद्ध में दीख रही थी। इन तमाम वर्षों में यह अनिवार्य छाया मुझ से दूर नहीं हुई। मेरे दिन-रात के विचारों के चारों ओर वह चक्कर काटती रही है और सम्भवतः उसकी अन्धकारमय रेखा इस

---

[1] "देवत्त्व प्रदान करना नहीं, बल्कि मानवी रूप में दिखलाना ही मनोवैज्ञानिक स्रष्टा का सर्वोच्च कार्य है।"

पुस्तक के पृष्ठों पर भी दृष्टिगोचर होगी। लेकिन आखिर छाया भी तो प्रकाश से ही उत्पन्न होती है। जिस व्यक्ति ने उषा और अन्धकार, युद्ध तथा शान्ति, उतार व चढाव सभी का अनुभव किया है, केवल उसी के बारे में यह कहा जा सकता है कि वह दरअसल जीवित रहा है।"

अपनी इस परिभाषा के अनुसार स्टीफन ज्विग ने जीवन को समझा था और खूब समझा था। मानवीय कमज़ोरियों या त्रुटियों को नहीं, उसकी रचनात्मक शक्ति को ही वे महत्त्व देते थे। वे कहते थे :

"वही वास्तव में सच्ची जिन्दगी व्यतीत करता है, जो अपनी जीवन-शक्ति को भावी सन्तान के लिये व्यय कर देता है और जो उसे भविष्य को अर्पित कर देता है।"

स्टीफन ज्विग अपनी रचनाओं में विद्यमान हैं। 'विराट' में पाठक उन्हीं के सात्विक तथा उज्ज्वल रूप का प्रतिबिम्ब देखेंगे—आकर्षक तथा मनोहर, विनम्र और प्रभावशाली। 'कर्मण्येवाधिकारस्त' के सन्देश को इस खूबी के साथ उपस्थित कर देने वाले उस अमर कलाकार की सेवा में हमारा सहस्र बार प्रणाम !

गान्धी भवन,
टीकमगढ़
१७-८-४८

—बनारसीदास चतुर्वेदी

अनुक्रमणिका

स्टीफन ज़्विग

स्व० स्टीफ़न ज़्विग : एक रेखाचित्र

नवम्बर १९३१

सल्ज़बर्ग (आस्ट्रिया) का एक बुड्ढा पोस्टमेन हांफता हुआ चिट्ठियों, तारों, अख़बारों और किताबों के पुलिन्दे से लदा हुआ एक साहब की कोठी की सीढ़ियां चढ़ रहा था। वैसे तो उनकी रोज़ की डाक ही काफी भारी होती थी, पर आज तो उसने मानो कमर ही तोड़ दी ! बात यह हुई थी कि आज एक आस्ट्रियन लेखक की पचासवीं वर्ष-गांठ थी। वे जर्मन भाषा के एक महान् ग्रन्थकार थे और जर्मनी के समाचारपत्र अपने कलाकारों की रजत-जयन्ती बड़ी शान के साथ मनाया करते थे। इसी कारण आज की डाक बहुत भारी हो गई थी।

इंसल वरलैग नामक प्रकाशन-संस्था ने लेखक की सब किताबों की तथा भिन्न-भिन्न भाषाओं में उनके जो अनुवाद हुए थे, उनकी सूची पुस्तकाकार प्रकाशित करके भेंट-स्वरूप भेज दी थी। उस सूची में संसार की प्रायः मुख्य-मुख्य भाषाएं आ गई थीं, यहां तक कि अन्धों के लिए भी उनकी किताबें ब्रेली पद्धति में लिख दी गई थीं ! पाठकों को यह बतलाने की आवश्यकता नहीं कि जगत् के इस अत्यन्त लोकप्रिय लेखक का नाम था स्टीफ़न ज़्विग। जिन भाषाओं में उनके ग्रन्थों के अनुवाद हो चुके हैं, उनके नाम सुन लीजिए—

आर्मीनियन	फ़रांसीसी	नार्वेजियन
बलगेरियन	जार्जियन	पोलिश

कैटेलन	यूनानी	पोर्चुगीज़
चीनी	हेब्रू	रुमानियन
क्रोशियन	हंगेरियन	रशियन
जैक	इटैलियन	सर्बियन
डैनिश	जापानी	स्पैनिश
डच	लैटिश	स्वीडिश
अंग्रेजी	लिथूनियन	युक्रेनियन
फ़िनिश	मराठी	यिड्डिश

एक बार 'लीग आव नेशन्स' (राष्ट्र-संघ) की 'अन्तर्राष्ट्रीय बौद्धिक सहयोग' नामक संस्था ने जांच करके अपनी रिपोर्ट में लिखा था—"इस समय संसार में सबसे अधिक अनुवादित ग्रन्थकार स्टीफ़न ज़्विग हैं।"

स्टीफ़न ज़्विग का जन्म सन् १८८१ में वियना में हुआ था। उनके पिता मोराविया के यहूदी थे और वे बड़े चतुर व्यापारी थे। अपने कौशल के कारण वे अपने पचासवें वर्ष में करोड़-पति बन गए थे। ज़्विग की माता इटली के अनकोना नामक स्थान में पैदा हुई थीं और इटैलियन तथा जर्मन दोनों भाषाओं को बखूबी बोल सकती थीं। ज़्विग के नाना के कुटुम्बी स्वीज़र-लैंड की सीमा के निकट रहते थे और वहां से वे भिन्न-भिन्न देशों को चले गए थे। कोई फ्रांस गए, कोई इटली तो कोई अमरीका। इस प्रकार उस परिवार के बच्चे जन्म से ही कई भाषाएं बोल सकते थे। अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टिकोण को विकसित करना उनके लिए सर्वथा स्वाभाविक था।

वियना नगरी अपने साहित्यिक तथा सांस्कृतिक वातावरण के लिए यूरोप भर में प्रसिद्ध थी। वह दो हज़ार वर्ष पुरानी थी और कम-से-कम एक हज़ार वर्ष से तो उसकी सांस्कृतिक परम्परा बिना किसी बाधा के उत्तरोत्तर बढ़ती चली आ रही थी।

उदाहरण के लिए वहां की कॉफ़ी की दूकानें लीजिए। आने-दो-आने देने पर वहां कोई भी व्यक्ति चाय या कॉफ़ी पी सकता था और साथ में वियना के ही नहीं, जर्मनी, फ्रांस, इटली और अमरीका तक के खास-खास बीसियों अखबार तथा मासिक पत्र भी पढ़ सकता था। इन दूकानों पर साहित्यिक लोग अनेक विषयों पर वार्तालाप तथा वाद-विवाद किया करते थे। लिखने के लिए वहां कागज़-कलम का प्रबन्ध था और वे अपनी डाक भी वहां निपटा सकते थे। कभी-कभी वे ताश भी खेलते थे। दरअसल इन दूकानों ने सार्वजनिक क्लब का रूप धारण कर लिया था। आस्ट्रिया के सांस्कृतिक धरातल को ऊँचा करने और वहां के निवासियों के दृष्टिकोण को अन्तर्राष्ट्रीय बनाने में चाय-कॉफ़ी की इन दूकानों का ज़बरदस्त हाथ था।

प्रारम्भिक पाठशाला में पढ़ने के बाद ज्विग को जिनेशियम नामक विद्यालय में पढ़ने के लिए भेजा गया। वहां की नीरस पढ़ाई के बोझ का मनोरंजक ब्यौरा ज्विग के आत्मचरित में मिलता है। जीवित भाषाओं में फ्रेंच, अंग्रेज़ी तथा इटैलियन तो पढ़ाई ही जाती थी, पर उनके साथ-साथ ग्रीक तथा लैटिन का भी अध्ययन करना आवश्यक था। मातृभाषा जर्मन अलग—रेखागणित और विज्ञान इनके अलावा। ज्विग ने उस शुष्क जीवन का जो करुणोत्पादक चित्र खींचा है, वह भारतीय विद्यालयों की वर्तमान शिक्षण-पद्धति से मिलता-जुलता है। यूरोप में तो परिस्थिति बहुत-कुछ बदल चुकी है। शिक्षा अब वहां भार-स्वरूप नहीं रही, विद्यार्थी समानता के धरातल पर अध्यापकों से बातचीत करते हैं और उनकी व्यक्तिगत आकांक्षाओं तथा रुचियों का भी ख्याल रक्खा जाता है, पर हमारे मुल्क में तो 'वही रफ्तार बेढंगी जो पहले थी सो अब भी है।'

उपर्युक्त कृत्रिम वातावरण के होते हुए भी यदि स्टीफ़न

ज़्विग ने अपनी प्रतिभा का विकास कर लिया तो उसका श्रेय उनके क्लास के विद्यार्थियों की स्पर्धा की भावना को मिलना चाहिए। एक तो उन दिनों वियना में नाटक, साहित्य तथा कला के लिए वैसे ही काफ़ी उत्साह था। समाचार-पत्र खासतौर पर इन विषयों पर लिखा करते थे, नगर की किसी भी साहित्यिक वा सांस्कृतिक घटना को वे उपेक्षा की दृष्टि से न देखते थे और फिर जिस कक्षा में स्टीफ़न ज़्विग भर्ती हुए थे, वह विशेष रूप से कला-प्रेमी और साहित्यानुरागी थी। क्लास में पढ़ाया कुछ जाता था और छात्र छिप-छिपा कर पढ़ते कुछ और ही थे! लैटिन के व्याकरण के पृष्ठों के पीछे कविताओं के पन्ने जोड़ दिये जाते थे और गणित की कापियों पर सुन्दर-से-सुन्दर काव्यों की नकल कर दी जाती थी। शिक्षक लोग शिलर की कविताओं पर लेक्चर देते थे और विद्यार्थी लोग डेस्क में छिपा-छिपा कर नीत्शे के ग्रंथ पढ़ते थे! छात्रों में यह प्रतियोगिता रहती थी कि हमारा ज्ञान अद्यतन (अपटूडेट) रहे। वे पुस्तक-विक्रेताओं की दूकानें छान डालते थे, नवीन किताबों की प्रतीक्षा बड़ी उत्कण्ठा से करते थे, पुस्तकालयों से ग्रंथ लाते थे और जो कोई विद्यार्थी नई बात का पता लगा लेता तो वह दूसरे संगी-साथियों को उसे बतलाने में गौरव अनुभव करता था। उन लोगों में होड़-सी लगी रहती थी कि कौन पहले किसी नवीन चीज़ का पता लगा ले। इसके सिवाय विद्यार्थियों की प्रतिभा के विकास पर सबसे अधिक प्रभाव डाला वियना की चाय-कॉफी की दूकानों ने, जिनका ज़िक्र हम ऊपर कर चुके हैं। सत्रह वर्ष की उम्र में स्टीफ़न ज़्विग ने जिस लगन के साथ साहित्य का अध्ययन किया था, वह लगन अपने जीवन के उत्तर भाग में वे कदापि प्रदर्शित नहीं कर सके। वाल्ट ह्विटमैन तथा अन्य कवियों की बीसियों कविताएँ उन्हें कण्ठस्थ थीं। आगे चलकर स्टीफ़न ज़्विग को साहित्य-जगत् में जो विश्वव्यापी कीर्ति

मिली उसकी नींव विद्यार्थी-जीवन में ही पड़ चुकी थी। उन्होंने लिखा है—

"विद्यार्थी जीवन की साहित्यिक तथा सांस्कृतिक जिज्ञासा ने मेरे रक्त में प्रवेश कर लिया था—बौद्धिक प्रेरणा मेरी नस-नस में व्याप्त हो गई थी और आगे चलकर जो कुछ मैंने पढ़ा और सीखा उसका दृढ़ आधार उन्हीं वर्षों का अध्ययन है। यदि बाल्यावस्था में किसी आदमी का शरीर निर्बल रह जाय तो बड़ी उम्र में वह उसकी क्षति-पूर्ति कर सकता है, पर यदि कोई अपने में विश्वात्मा का अनुभव करना चाहता हो तो उसके लिए यह अनिवार्य है कि वह यौवनावस्था में ही आत्मा की ग्रहणशक्ति को विकसित कर ले।"

जब स्टीफ़न ज्विग केवल उन्नीस वर्ष के ही थे, जर्मन-काव्य ग्रन्थों के एक सर्वश्रेष्ठ प्रकाशक ने उनकी कविताओं का एक संग्रह छपाने के लिए स्वीकृत कर लिया। उस समय उस नवयुवक कवि को जो हर्ष हुआ, उसका बड़ा आकर्षक वर्णन उन्होंने किया है। उस ग्रन्थ की मुख्य-मुख्य समाचार-पत्रों तथा प्रतिष्ठित कवियों ने मुक्त कंठ से प्रशंसा की थी और जर्मनी के एक सर्वोत्तम गायनाचार्य ने उनकी छः कविताओं को स्वर-लिपियों में बद्ध कर दिया था।

पर स्टीफ़न ज्विग अपनी रचनाओं के विषय में अत्यन्त सावधान और काफ़ी कठोर रहे हैं। उस काव्य ग्रन्थ की एक भी कविता उन्होंने अपने संग्रह में शामिल नहीं की! उन्होंने अपने साहित्यिक जीवन का एक सिद्धान्त बना लिया था कि कोई भी अधपकी चीज़ हमारे हाथ से न निकलने पावे। इसी कारण उन्होंने अपने प्रारंभिक जीवन की कितनी ही पुस्तकें दुबारा नहीं छपने दीं! १६०१ में उनकी प्रथम पुस्तक छपी थी और सितम्बर सन् १६४२ में, अपने आत्मघात के पहले, उन्होंने अपनी अन्तिम

पुस्तक प्रकाशक को भेज दी थी। इस बयालीस वर्षीय अखण्ड साहित्यिक तपस्या का दृष्टांत विश्व-साहित्य में मुश्किल से ही मिलेगा।

हम पहले बतला चुके हैं कि संसार की तीस भाषाओं में ज्विग की पुस्तकों का अनुवाद हो चुका है। जर्मनी, फ्रांस और इटली में वे समान रूप से लोकप्रिय थे। उनके ग्रन्थ लाखों की संख्या में छप कर जर्मनी में घर-घर फैल गए थे। इटली में मुसोलिनी उनकी रचनाओं के प्रशंसकों में अग्रगण्य थे और रूस में मैक्सिम गोर्की ने उनके ग्रन्थों के रूसी अनुवाद की भूमिका लिखी थी। अंग्रेजी में उनके सत्रह ग्रन्थों का अनुवाद हो चुका है। उनको किसी-किसी किताब की पचास-पचास हज़ार प्रतियां एक वर्ष में बिक गईं! उनकी कितनी ही पुस्तकों के आधार पर नाटक बनाये गए, कितनी ही पर फिल्में बनाई गईं और बाज़-बाज़ पुस्तक ढाई लाख छपी और फिर संसार का सबसे अधिक अनुवादित ग्रन्थकार होना क्या कम गौरव की बात है?

ज्विग ने बड़ी विनम्रता के साथ अपनी इस सफलता का रहस्य आत्मचरित में बतलाया है। वे लिखते हैं—

"मुझमें एक बड़ी भारी कमजोरी है, वह यह कि किसी भी अनावश्यक वाक्य या प्रसंग को पढ़ कर मुझे बड़ी झुँझलाहट होती है, किसी भी अस्पष्ट बात से मेरा धैर्य छूट जाता है और कोई भी चीज़, जो पुस्तक के प्रवाह में बाधा डाले, मेरे लिए असह्य हो उठती है। बस मेरी यह स्वभावगत कमजोरी ही मेरी सफलता का मूल कारण है।"

ज्विग के लिखने का तरीका यह था कि पहले तो वे जितना भी मसाला किसी विषय पर मिल सकता, इकट्ठा करते थे और उसके लिए वे कोना-कोना छान डालते थे—क्या मजाल कि कोई चीज़ उनकी तेज निगाह से छूट जाय—और फिर प्रथम पाण्डु-

लिपि तैयार कर लेते थे। तब उनका वास्तविक कार्य प्रारम्भ होता था। अगर पहली कापी एक हज़ार पृष्ठ की होती तो अन्तिम में सिर्फ दो सौ ही पृष्ठ बाकी रह जाते थे! शेष आठ सौ को रद्दी की टोकरी में फेंक देना कोई आसान काम न था, पर इसमें उन्हें अलौकिक आनन्द मिलता था।

एक बार ज़्विग महोदय बड़े प्रसन्न दीख पड़ रहे थे। उनकी पत्नी ने उनसे कहा, "मालूम होता है कि आज आपने अपनी किसी रचना की काफी काट--छांट कर डाली है!"

ज़्विग ने बड़े अभिमान के साथ उत्तर दिया, "हां, मैंने एक पैराग्राफ़ को साफ उड़ा दिया और घटना--प्रवाह में और भी गति ला दी।"

'काता और ले दौड़े' की नीति के अनुयायी इससे कुछ शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

ज़्विग लिखते हैं—

"मैंने तमाम बाहरी सम्मानों को अस्वीकार ही किया है। कभी किसी पद या प्रतिष्ठा अथवा उपाधि इत्यादि को ग्रहण नहीं किया। न किसी सभा का प्रधान बना और न किसी सोसाइटी या कमेटी अथवा परिषद से अपना सम्बन्ध रक्खा। भोज़ों में शामिल होना मेरे लिए अत्यन्त कष्ट-प्रद रहा है और किसी से कुछ मांगने के पहले ही -- चाहे वह प्रार्थना परोपकारार्थ ही क्यों न हो--मेरी ज़बान सूख जाती है। मैं जानता हूं कि आज की दुनिया में इस प्रकार के ख़्यालात दकियानूसी ही माने जायेंगे। पद और उपाधि इत्यादि से एक फायदा तो होता ही है, वह यह कि आदमी धक्कम-धक्के से बच जाता है। पर मेरे मन में एक आन्तरिक अभिमान है, जिसे मैंने अपने पिताजी से पैतृक सम्पत्ति के रूप में पाया है और उसी अभिमान के कारण मैं इन तमाम उपाधि रूपी व्याधियों से बचा रहा हूँ।"

ज्विग के पिताजी करोड़पति थे और अव्वल नम्बर के स्वाभिमानी। वे किसी का भी अहसान अपने ऊपर नहीं लेना चाहते थे। उनके लिए मान-सम्मान प्राप्त करना बहुत आसान था, पर आत्माभिमानवश वे उससे दूर ही भागते रहे। ज्विग ने भी इसी नीति का अनुसरण किया। जिस प्रकार कोई नट बांस के सन्तुलन के द्वारा रस्सी पर चला जाता है और इधर-उधर नहीं झांकता, उसी प्रकार ज्विग ने माता सरस्वती की आराधना में कभी कोई आघात नहीं आने दिया। 'समत्वं योगमुच्यते'; योग की इस परिभाषा के अनुसार ज्विग सचमुच साहित्य-योगी थे।

ज्विग ने अपने जीवन-चरित में नवयुवक लेखकों को एक बड़े पते की बात बतलाई है। वे लिखते हैं—

"यदि कोई नवयुवक लेखक अपने लक्ष्य के विषय में अनिश्चित हो तो उसे मैं एक ही परामर्श दूँगा, वह यह कि वह किसी महान लेखक की छोटी-मोटी पुस्तक का अनुवाद करे या फिर उसके आधार पर कोई ग्रन्थ लिख दे। नवीन लेखक जो भी सेवा आत्म-त्याग की भावना से करेगा, उसमें उसे अपनी कृति की अपेक्षा सफलता मिलने की विशेष सम्भावना रहेगी; क्योंकि भक्ति-पूर्वक किया हुआ कोई भी कार्य कदापि निष्फल नहीं होता।"

ज्विग का यह अनुभूत प्रयोग था और यह हृदयंगम करने की चीज है। वरहेरन नामक फरांसीसी कवि की रचनाओं के अनुवाद में उन्होंने दो-ढाई वर्ष लगा दिये थे और इस प्रकार अपनी स्थायी कीर्ति की नींव रक्खी थी। अनुवाद इतना बढ़िया हुआ था कि खुद फ्रेंच भाषा की अपेक्षा जर्मन भाषा में वरहेरन का नाम अधिक प्रसिद्ध हो गया!

महाकवि चकबस्त ने कहा था, "दीन क्या है, किसी कामिल

की इबादत करना।" अर्थात् योग्यों की पूजा ही वास्तविक धर्म है। ज़्विग की रचनाओं को देखकर यह निश्चय हो जाता है कि उन्होंने भी योग्यों की पूजा को ही अपना साहित्यिक धर्म मान लिया था। यद्यपि ज़्विग अच्छे कवि थे, बहुत बढ़िया नाटककार और यूरोप में उनके मुकाबले के आलोचक बहुत ही कम पाये जाते थे, तथापि उनकी कीर्ति मुख्यतया उनके लिखे जीवन-चरितों से ही चिरस्थायी रहेगी। उनका लिखा रोमां-रोलां का जीवन-चरित एक आदर्श ग्रन्थ माना जायगा। इनके सिवाय बालजक, डिकिन्स, स्टेण्डहल, फाउचे, ऐरेसमस, मेरी स्टुआर्ट, मेरी ऐण्टोइनेटी, और फ्रायड इत्यादि पर लिखे हुए, उनके विस्तृत निबन्ध, ग्रन्थ अथवा रेखाचित्र उनकी चरित्र-चित्रण की असाधारण योग्यता को प्रकट करते हैं। सूखी हड्डियों में जान डाल देना ज़्विग के लिए मानों बांए हाथ का खेल था। चरित-नायकों या चरित-नायिकाओं की अन्तरात्मा में प्रवेश करके उनकी जीती-जागती मूर्ति पाठकों के सम्मुख खड़ी कर देने की कला में वे अद्वितीय थे।

किसी प्रतिभाशाली लेखक के प्रसिद्धि प्राप्त कर लेने पर तो उसके सहस्रों प्रशंसक मिल जाते हैं। ज़्विग की दूरदर्शिता की तारीफ करनी चाहिए कि वे छिपे हुए हीरों को प्रकाश में लाया करते थे। उनका परिचय रोमां-रोलां से जिस प्रकार हुआ, उसकी कथा बड़ी मनोरंजक है। ज़्विग महोदय एक बार किसी रूसी महिला के यहां निमन्त्रित किये गए थे। वे स्थापत्य-कला में विशेषज्ञ थीं और मूर्तियां बनाया करती थीं। ज़्विग महोदय ठीक वक्त पर उनके यहां पहुँचे, पर श्रीमतीजी ग़ैरहाज़िर थीं—रूसी लोग भी हम भारतीयों की तरह ही समय के गैरपाबन्द होते हैं! इसलिए ज़्विग ने बैठे-ठाले एक पत्रिका हाथ में उठाली। वह रोमां-रोलां की मित्र-मण्डली द्वारा सम्पादित थी और 'जीन

क्रिस्टोफ़ी' नामक उपन्यास, जिस पर आगे चलकर नोबुल पुरस्कार मिला, इसी पत्रिका में धारावाहिक रूप से निकल रहा था। उन महिला के आने पर ज़्विग ने उनसे पूछा—"ये रोमां-रोलां महाशय कौन हैं?" वे इसका कोई सन्तोष-जनक उत्तर न दे सकीं! पेरिस पहुँचकर ज़्विग ने रोमां-रोलां को तलाश करना शुरू किया। पर किसी से उनके बारे में पूरा-पूरा पता न चला! आखिरकार ज़्विग ने अपनी एक पुस्तक रोमां-रोलां के नाम भेज दी और उन्होंने उत्तर में लिखा, "आप मेरे यहां पधारने की कृपा कीजिए।" ज़्विग उनसे मिले और दोनों में जो घनिष्ठ मित्रता स्थापित हो गई, वह जीवन के अन्त तक रही। १६२१ में उन्होंने जर्मन-भाषा में रोमां-रोलां का जीवन-चरित प्रकाशित किया, जिसका अनुवाद अंग्रेजी में भी हो चुका है।

ज़्विग संसार के नागरिक थे। अपनी कलम से उन्होंने कभी एक भी वाक्य ऐसा नहीं लिखा था, जो जातीय विद्वेष को फैलाने में सहायक होता। यद्यपि राष्ट्रीयता के नक्कारखाने में उनकी तूती की आवाज़ किसी ने नहीं सुनी, तथापि वे अपने निर्दिष्ट मार्ग से कभी विचलित नहीं हुए। जिन्होंने प्रथम महायुद्ध में (१६१४ से १६१८ तक) विचार-स्वातन्त्र्य का झण्डा ऊँचा रक्खा और जो घृणा तथा विद्वेष के वातावरण से ऊँचे उठ सके, ऐसे यूरोपियन लेखकों में रोमां-रोलां तथा स्टीफ़न ज़्विग अग्रगण्य थे और इस पिछले महायुद्ध का दुष्परिणाम दोनों को ही भयंकर रूप से भोगना पड़ा। दोनों ही हिटलर-शाही की बलिवेदी पर बलिदान हो गए!

यदि किसी लेखक को नाज़ीवाद के अत्याचारों को सबसे अधिक मात्रा में सहन करना पड़ा तो वे स्टीफ़न ज़्विग ही थे। उनकी किताबें लाखों की संख्या में जर्मनी में फैली हुई थीं। वे सब ज़ब्त कर ली गईं, जलवा दी गईं और बच-खुची

तालों में बन्द कर दी गईं ! उन्हें एक मुल्क से दूसरे मुल्क को भागे-भागे फिरना पड़ा। उनका लाखों की कीमत का साहित्यिक संग्रहालय—जिसकी गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ प्राइवेट म्यूजियमों में की जानी चाहिए—छिन्न-भिन्न हो गया और उनके पारिवारिक कष्ट भी पराकाष्ठा को पहुँच गए। अपनी पूज्य वृद्धामाता की अन्तिम बीमारी के दिनों में वे उनकी मृत्यु-शय्या के पास भी न पहुँच सके ! ज्विग आस्ट्रियन थे, यहूदी थे, संसार के नागरिक थे, उनका दृष्टिकोण अन्तर्राष्ट्रीय था और वे शान्तिवादी थे। इनमें से एक ही चीज उनकी अनुभूतियों को कष्टमय बनाने के लिए पर्याप्त थी, पर उनमें तो ये सभी एकत्र हो गई थीं ! इसलिए उन्हें भरपूर मात्रा में कालकूट का पान करना पड़ा—जहर के एक-दो प्याले नहीं, घड़े-के-घड़े पीने पड़े !

इस संक्षिप्त लेख में हम ज्विग के आत्मचरित का शतांश भी नहीं दे सकते। यहां हम उनका अन्तिम पत्र प्रकाशित करते हैं, जो उन्होंने अपनी पत्नी के साथ विषपान करने के पहले २२ फरवरी सन् १९४२ को लिखा था।

"स्वेच्छा से और अपने होश-हवास की दुरुस्तगी में अपने प्राण-त्याग करने के पहले मैं अपना अन्तिम कर्तव्य-पालन करना चाहता हूँ। मैं ब्रेजिल देश की आश्चर्य-जनक भूमि को, जिसने मुझे प्रेमपूर्ण आश्रय दिया, हार्दिक धन्यवाद देता हूँ। इस भूमि-खंड के प्रति मेरे हृदय में श्रद्धा दिनों-दिन बढ़ती ही गई है और यदि कोई ऐसा देश है, जहां मैं अपना जीवन पुनः प्रारम्भ कर सकता था तो वह ब्रेजील ही है; क्योंकि मेरी मातृ-भाषा की भूमि मेरे लिए समाप्त हो चुकी है और मेरी आध्यात्मिक मातृ-भूमि यूरोप ने आत्मघात कर लिया है।

"लेकिन अब मैं साठ वर्ष से ऊपर का हो चुका और अब

बिल्कुल नवीन जीवन प्रारम्भ करने के लिए असाधारण शक्ति की आवश्यकता है। जो शक्ति मुझ में थी, वह वर्षों तक लामकान होकर इधर-से-उधर भागे फिरने में खर्च हो चुकी है। इसलिए मैं यही ठीक समझता हूँ कि इस ज़िन्दगी का खात्मा कर दिया जाय। जिस जीवन में मुझे बौद्धिक परिश्रम से सबसे अधिक आनन्द मिला और जिसमें मैंने व्यक्तिगत स्वाधीनता को ही संसार की सर्वोच्च वस्तु समझा, उसकी समाप्ति ठीक समय पर, जब कि मैं तन कर खड़ा हो सकता हूँ, हो जानी चाहिए। सम्पूर्ण मित्रमण्डल को मैं नमस्कार करता हूँ। ईश्वर करे कि दीर्घरात्रि के बाद उषा के दर्शन करने का सौभाग्य उन्हें प्राप्त हो। मैं तो अपना धैर्य खो चुका हूँ, इसलिए उसके पहले ही बिदा होता हूँ।"

पैट्रोपोलिस —स्टीफन ज़्विग

२२—२—१९४२

× × ×

जहां तक हृदय की कोमल भावनाओं के विश्लेषण और चित्रण का सम्बन्ध है ज़्विग की गणना संसार के सर्वश्रेष्ठ लेखकों में कवीन्द्र रवीन्द्र और रोमां-रोलां के साथ ही की जायगी; पर जहां लेखन-प्रवृत्ति की वफ़ादारी का प्रश्न है, ज़्विग निस्सन्देह अद्वितीय थे। ज़िन्दगी के जो उतार-चढ़ाव उन्होंने देखे, जिस तरह बेघरबार के होकर उन्हें एक देश से दूसरे देश को भागना पड़ा, यहूदी होने के कारण उन्हें घृणा का जितना अधिक शिकार बनना पड़ा और अपनी कोमल भावनाओं पर जितने जबरदस्त आघात सहने पड़े, उनके मुकाबले में संसार के बड़े-से-बड़े साहित्य-सेवियों की तपस्या फीकी पड़ जायगी। ज़्विग दुःखों के विश्वविद्यालय में से आचार्य होकर निकले थे, जबकि दूसरे लोग केवल प्रवेशिका परीक्षा पास कर पाते हैं या हद-से-हद स्नातक ही बन पाते हैं।

सम्भवतः कुछ महानुभाव ज्विग के आत्मघात के महत्व को न समझ सकेंगे। उनसे हमारा अनुरोध है कि वे उनके विस्तृत आत्मचरित को पढ़ें। वीणा के तार भला घन की चोटों को कब तक सहन कर सकते थे!

यद्यपि हिटलरशाही तथा नाज़ीवाद को खासी करारी चोटें सहनी पड़ी हैं और दोनों ही आज धराशायी होकर धूल चाट रहे हैं, तथापि जो मर्मान्तक चोट ज्विग ने अपने इस आत्म-चरित से दी है, उसकी कसक सबसे अधिक व्यापक होगी।

ज्विग का आत्मचरित और आत्मबलिदान इस बात का प्रमाण है कि सहस्रों वायुयान तथा लाखों बम जो काम नहीं कर सकते, वह एक दृढ़-प्रतिज्ञ आत्मा कर सकती है। विशाल-काय हाथी के क्षुद्र चींटी द्वारा मारे जाने की बात सच है या नहीं, हम नहीं जानते, पर नाज़ीवाद के भूत के लिए ज्विग की जीवनी शिव की विभूति है। एक साहित्य-साधक सती की तरह साधना करके और अपनी समस्त शक्तियों को केन्द्रित करके कितना ऊँचा उठ सकता है, ज्विग का जीवन इसका एक उज्ज्वल दृष्टांत है।

अन्तर्राष्ट्रीय प्रेम तथा विश्वव्यापी शान्ति के जिन सिद्धान्तों के लिए ज्विग जिये और मरे, वे सिद्धान्त आज भी संसार में स्थापित नहीं हो पाये और आज भी जगत् के आकाश में घृणा तथा विद्वेष की घटाएं छाई हुई हैं। पर यह अन्धकारमय रात्रि बहुत दिनों तक नहीं रहेगी और जिस उषा का स्वप्न ज्विग ने देखा था, उसके कभी-न-कभी दर्शन अवश्य होंगे।

जिस महामानव ने अपनी जीवन-ज्योति द्वारा द्वेष के अन्धकार को दूर करने और प्रेम के प्रकाश को लाने के लिए भरपूर प्रयत्न किया और फिर जिस ने अपनी इस जीवन-ज्योति को नाटकीय ढंग से बुझाकर उस पर्दे की बीभत्स कालिमा के

पूर्ण रूप से दर्शन करा दिये, उस अद्वितीय साहित्य-साधक स्टीफ़न ज्विग की स्मृति में हमारी यह श्रद्धांजलि अर्पित है।

ज्विग अमर हैं और वह दिन शीघ्र ही आने वाला है, जब यूरोप की तरह भारतवर्ष में भी उनके ग्रन्थ लोकप्रिय बनेंगे और उन्हें अक्षय कीर्ति प्राप्त होगी—

कुण्डेश्वर
(टीकमगढ़)

कीर्तिर्यस्य स जीवति।

—बनारसीदास चतुर्वेदी

विराट

लोकाख्यान

[यह उन विराट की कथा है, जिन्हें उनके देशवासियों ने उनके चार गुणों के लिए सम्मानित किया था। फिर भी विजेताओं के इतिहास अथवा सन्तों के ग्रन्थों में कहीं एक शब्द भी उनके विषय में नहीं मिलता और उनकी स्मृति लोगों के मन से उतर चुकी है।]

: १ :

अपने ज्ञान के प्रकाश से अपने सेवकों के हृदय परिपूर्ण करने के लिए जिस समय भगवान बुद्ध इस भूमि पर निवास करते थे, उससे कुछ ही दिन पहले राजपूताना के महाराजा की प्रजा के रूप में वीरबाघेर प्रदेश में विराट नाम का एक कुलीन और सत्यनिष्ठ व्यक्ति रहता था। तलवार चलाने में उसे कमाल हासिल था, कारण कि वह एक महान योद्धा था। सबसे अधिक निर्भीक और ऐसा बेजोड़ शिकारी कि जिसका निशाना कभी चूके ही नहीं। बर्छी पर उसका हाथ इतना सधा था कि मजाल नहीं जो इधर से उधर हो जाय। भुजाओं में वज्र के समान बल था। आकृति गम्भीर और आंखें निर्भीक। क्रोध में कभी उसने मुट्ठी ऊँची नहीं की और न आवेश में कभी उसकी आवाज़ ही तेज़ हुई। अपने स्वामी का चूंकि वह स्वयं स्वामि-भक्त नौकर था, इसलिए उसके सेवक भी उसकी आदरपूर्वक

सेवा-शुश्रूषा करते थे। इसका एक कारण यह भी था कि उस भूमि पर वास करने वाले समस्त निवासियों में न्याय की दृष्टि से विराट का स्थान बहुत ऊँचा था। भले आदमी जब उसके घर के आगे से निकलते तो श्रद्धा से सिर झुका देते और बच्चों की निगाह ज्यों ही उस पर जाती कि उसकी चमकीली आंखें देखकर वे मुस्करा उठते।

लेकिन एक दिन की बात कि उसके स्वामी पर मुसीबत का पहाड़ टूट पड़ा। महाराज की पत्नी का भाई, जो आधे राज्य का क्षत्रप (वाइसराय) था, समूचे राज्य को हड़प लेने के लिए लालायित हो उठा और दुबका-चोरी भेंट देकर उसने अपना स्वप्न पूरा करने के लिए राज्य के सर्वोत्तम योद्धाओं को अपनी ओर फांस लिया। पुजारियों को भी उसने इस बात पर राज़ी कर लिया कि अन्धेरा होते ही जलाशय में से वे उन राजहंसों को उड़ा लावें, जो हज़ारों वर्षों से वीरबाघेरवासियों के लिए राजत्व के चिन्ह रहे थे। अपने हाथियों को उसने मैदान में इकट्ठा किया और असन्तुष्ट पहाड़ी-निवासियों को बुलाकर सबके साथ राजधानी की ओर कूच कर दिया।

राजाज्ञा से सबेरे से लेकर सन्ध्या तक पीतल की झाँझें बजती रहीं और बाजों की ध्वनि होती रही। रात को मीनारों पर आग जला कर और उसमें मसाला डाल कर खतरे के संकेत के रूप में पीली रोशनी की गई, लेकिन बहुत थोड़े लोग आये। बात यह थी कि राजहंसों की चोरी का समाचार चारों ओर फैल गया था, जिसे सुन कर सरदारों के हृदय भीतर-ही-भीतर बैठे जा रहे थे। सेनापति और हाथियों के अफ़सर, जो कि महाराज के योद्धाओं में अत्यन्त विश्वसनीय माने जाते थे, दुश्मन से जा मिले थे। बेचारे महाराजा ने मित्रों की सहायतार्थ इधर-उधर बहुतेरी निगाह दौड़ाई, लेकिन निष्फल। खेद तो यह कि वह

बहुत ही कठोर स्वामी रहा था। दण्ड देने को सदैव उद्यत और सामंती कर वसूल करने में बहुत ही रुखत। महल में तैनाती पर कोई भी भरोसे का सरदार नहीं रहा था और वहां गुलामों और छोटे-मोटे नौकरों की बेबस भीड़ ही दिखाई देती थी।

इस संकट की घड़ी में महाराजा का ध्यान विराट की ओर गया, जिसने महाराजा की भक्तिपूर्वक सेवा करने की शपथ ली थी। आबनूस की पालकी में सवार होकर महाराजा उस स्वामि-भक्त सेवक के घर की ओर रवाना हुए। ज्यों ही वे पालकी से उतरे, विराट ने प्रणाम किया; लेकिन महाराजा ने जब उससे सेना का नेतृत्व कर दुश्मन के खिलाफ़ सेना का संचालन करने का अनुरोध किया तो उनकी आकृति ऐसी हो उठी, मानो वे विराट के सामने एक याचक के रूप में उपस्थित हुए हों। विराट ने श्रद्धा से नत होकर कहा—"स्वामी, मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा और जब तक विद्रोह की अग्नि को शांत नहीं कर दूँगा, इस छत के नीचे वापस कदम नहीं रक्खूँगा।"

अनंतर उसने अपने बेटों, सम्बन्धियों और गुलामों को इकट्ठा किया और उन्हें साथ लेकर बचे-खुचे राजभक्तों के साथ मिल कर आक्रमण के लिए अपनी फ़ौज को तैयार किया। उसकी सेना ने जंगल में होकर कूच किया और शाम होते-होते वे उस नदी के किनारे आए, जिसके दूसरी ओर अनगिनत संख्या में दुश्मन डेरा डाले पड़ा था। विद्रोहियों को अपनी ताक़त का पूरा भरोसा था और वे नदी का पुल बनाने के लिए पेड़ काट-काट कर गिरा रहे थे। इसी पुल से अगले दिन सबेरे वे नदी पार करने और उस ओर की भूमि को खून में डुबो देने की आशा कर रहे थे। लेकिन एक जानवर का पीछा करते हुए विराट को पुल के स्थान से कुछ ऊपर एक घाट का पता लग गया था। आधी रात के समय उसने अपने आदमियों को उसी घाट

से नदी पार कराई और दुश्मन को अचानक जा घेरा। जलती मशालें लेकर वफ़ादार सैनिकों ने हाथियों को आतंकित कर दिया, जिससे वे इधर-उधर दौड़ने लगे और सुप्तावस्था में पड़े दुश्मनों के गिरोह में अव्यवस्था फैल गई। विराट पहला व्यक्ति था, जो राज्य को हड़प करने की इच्छा रखने वाले विद्रोही के डेरे में पहुंचा और सोने वाले पूरी तरह से जागें इससे पहले ही उनमें से दो को तलवार से उड़ा दिया और फिर तीसरा ज्यों ही अपने अस्त्र लेने आगे बढ़ा कि उसका भी काम तमाम कर दिया। चौथे और पांचवे से अन्धेरे में ही उसकी भिड़न्त हो गई। उनमें से एक को तो उसने सिर पर वार करके काट गिराया और दूसरे की छाती में बर्छी भोंक कर मौत के घाट उतार दिया। ज्यों ही वे सब प्राण-हीन होकर एक दूसरे के सहारे गिरे, विराट डेरे के द्वार पर जा खड़ा हुआ, ताकि कोई भीतर आकर राजत्व के पावन प्रतीक उन श्वेत राजहंसों को चुरा न ले जाय। लेकिन ऐसा करने कोई आया नहीं। कारण कि दुश्मनों में तो भगदड़ मची थी और वे हर्षोन्मत्त विजयी सैनिकों के दबाव के मारे मुसीबत में थे। बैरी के पीछा करने का शोर थोड़ी देर में धीमा पड़ गया। तब विराट तलवार हाथ में लिये डेरे के सामने बैठ गया और संगी-साथी सैनिकों के लौटने की बाट जोहने लगा।

कुछ देर में वनों के पीछे मंगलमय दिवस का उदय हुआ। बाल-रवि के प्रकाश में ताड़-वृक्ष स्वर्णिम हो उठे और नदी के जल में उनका प्रतिबिम्ब ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो वे लाल-लाल जलती मशालें हों। सूर्य एकदम लाल था, मानो पूर्व दिशा के वक्ष पर कोई भयंकर घाव हो। विराट उठा। वस्त्र एक ओर रक्खे और जलधारा की ओर बढ़ा। सूर्य भगवान के समक्ष प्रार्थना के रूप में सिर झुका कर वह नित्य-कर्म के लिए पानी में घुसा और अपने हाथों से रक्त को धोकर साफ़ किया। इसके

बाद प्रभात के धवल प्रकाश में वह किनारे पर लौटा और कपड़े पहन कर डेरे की तरफ़ देखने चला कि रात में उसने क्या-क्या कर डाला। मृत शरीर पड़े थे। उनकी आंखें खुली थीं और चेहरे डर से बिगड़ गये थे। राजद्रोही का सिर कटा पड़ा था और साथ ही उस व्यक्ति का भी छाती में तलवार झुकने से काम तमाम होगया था, जो बीरवाघेर राज्य के प्रधान सेनापति के पद पर रहा था। विराट ने उनकी आंखें बन्द कर दीं और उन मृतकों को देखने आगे बढ़ा, जिन्हें उसने सोते में ही मार डाला था। वस्त्रों में अधलिपटे उनके शरीर पड़े थे। दो तो उनमें ऐसे थे, जिन्हें विराट पहचानता नहीं था। विद्रोही के गुलाम। वे दक्षिण-वासी थे। उनके रुई से बाल थे और चेहरे काले; लेकिन ज्यों ही विराट की निगाह अन्तिम शव पर गई, उसकी आंखें धुंधली हो आईं। उसने देखा कि उसके बड़े भाई बेलंगर का सिर उसके सामने पड़ा है। वह पहाड़ी प्रदेशों का राजा था और राजद्रोही की सहायता के लिए आया था। विराट ने अनजाने उसे मार गिराया। कांपता-कांपता वह झुका कि देखे कि कहीं उसमें स्पन्दन शेष है या नहीं। लेकिन उसके हृदय की गति तो सदैव के लिए थम गई थी। मृतक की काली-काली चमकीली आंखें उसकी ओर ऐसे ताकती थीं मानो विराट की आत्मा को बेध डालेंगी। विराट मुश्किल से सांस ले सका और वहीं मृतकों के बीच बैठ गया। उसे लगा, जैसे वह भी उन्हीं में से एक मुर्दा है। उसने अपनी आंखें अपने मां-जाये भाई की निगाह पर से हटा लीं, जो उसे अपराधी ठहरा रही थी।

इसके बाद शीघ्र ही बाहर आवाजें सुनाई देने लगीं। सिपाही डेरे को लौट रहे थे। उनके हृदय में आनन्द की लहरें हिलोरें ले रही थीं और लूट-पाट के धन से सम्पन्न हो वे चिड़ियों की भांति हर्षोन्मत्त होकर चहचहा रहे थे। यह देखकर कि राज्य में

विद्रोह की अग्नि प्रज्वलित करने वाला और उसके संगी-साथी मारे गये हैं और यह जान कर कि पवित्र राजहंस सुरक्षित हैं, वे खुशी से उछलने और नृत्य करने लगे। उल्लास में भर कर वे विराट की पोशाक चूमते थे और चिल्लाते थे कि तलवार चलाने में वह एक ही है और धन्य है! जब अधिकांश सिपाही लौट आये तो उन्होंने अपनी लूट का सामान गाड़ियों पर लादा। बोझ के मारे गाड़ियों के पहिये ज़मीन में इतने धँस गये कि खींचने के लिए भैंसों को आर लगानी पड़ी और उनके भार से नावों के डूब जाने का ख़तरा दीखने लगा। एक सन्देशवाहक जलधारा को पार करके महाराजा के पास समाचार लेकर गया। शेष सब सामान के साथ रह गये और विजय पर खुशियाँ मनाने लगे।

इस बीच विराट ख़ामोश बैठा था, मानो सपना देख रहा हो। केवल एक बार उसके मुँह से आवाज़ निकली, जब कि सिपाही मृतकों के शरीर से कपड़े उतारने लगे। विराट उठ खड़ा हुआ और उसने आदेश दिया कि शवों के दाह के लिए चिताएँ तैयार की जायँ। नौकर-चाकर आश्चर्य-चकित थे कि वह उन षड़यंत्रकारियों के साथ ऐसी दयालुता का बर्ताव क्यों कर रहा है, जिनकी बोटी-बोटी गीदड़ों से नुचवा डालनी चाहिए थीं। लेकिन फिर भी जो आज्ञा उन्हें मिली, उन्होंने उसका पालन किया। चिताएँ जब तैयार हो गईं तो स्वयं विराट ने उनमें आग लगाई और लपटों में सामग्री तथा चन्दन की आहुति दी। तत्पश्चात् मुँह फेर कर वह चुप-चाप खड़ा हो गया और उस समय तक खड़ा रहा, जब तक कि जलती चिताएँ गिरने तथा चमकती राख ज़मीन पर बिखरने न लगी।

इस बीच नौकर-चाकरों ने वह पुल तैयार कर डाला, जिसे शेखी में भर कर एक दिन पहले दुश्मन के आदमियों ने बनाना

प्रारम्भ किया था। केले के पत्ते हाथ में लिये पहले योद्धाओं ने पुल पार किया, फिर गुलामों ने और उसके बाद अश्वारोही सरदारों ने। विराट ने अधिकांश योद्धाओं को पहले ही रवाना कर दिया, क्योंकि उनका शोर और संगीत उसकी मनःस्थिति से मेल नहीं खाता था। पुल के मध्य में रुक कर उसने प्रवाहित धारा को दाएँ-बाएँ देखा। जो सिपाही उसके आगे पुल पार कर चुके थे और जो पार करने को थे तथा जो सेनापति की आज्ञा से पीछे-पीछे चल रहे थे, सबके सब आश्चर्य करने लगे। उन्होंने देखा कि विराट ने अपनी तलवार ऊँची की, मानो स्वर्ग को भयभीत करना चाहता हो, लेकिन जब उसकी बांह नीची हुई तो उसकी उँगलियां ढीली पड़ गईं और अस्त्र हाथ से छूट कर नदी की धारा में गिरा और पानी में विलीन हो गया। दोनों किनारों से नंगे बालक पानी में कूद पड़े। उनका अनुमान था कि तलवार अचानक गिर गई है और गोता लगाकर वे उसे निकाल लाना चाहते थे, लेकिन विराट ने उन्हें रोक दिया और आगे बढ़ चला। उसके दोनों ओर आश्चर्य-चकित नौकर-चाकर थे। विराट बहुत ही दुखित था। घर का लम्बा रास्ता पार करते समय एक शब्द भी उसके होठों से नहीं निकला।

बीरवाघेर के सुसज्जित द्वार और मीनारों के शिखर अब भी काफ़ी फासले पर थे, जब कि एक सफ़ेद धूल का बादल आगे बढ़ता हुआ दिखाई दिया। धूल को चीर कर अग्रदूत और अश्वारोही चले आ रहे थे। सेना को देखते ही वे रुक गये और सड़क पर उन्होंने कालीन बिछा दिये। यह इस बात का सूचक था कि महाराजा का आगमन हो रहा है। महाराजा के चरण जन्मदिवस से लेकर मृत्युसमय तक सामान्य भूमि का स्पर्श नहीं कर सकते थे। अब महाराजा सामने दिखाई देने लगे। वे हाथी पर सवार थे और उनके चारों ओर नवयुवकों की टोली

थी। आगे आकर उनका आज्ञाकारी हाथी झुका और महाराजा उतर कर कालीन पर आ खड़े हुए। विराट ने चाहा कि अपने स्वामी को झुक कर प्रणाम करे, लेकिन महाराजा उसे आलिंगन में बाँधने के लिए तेजी से आगे बढ़ आए। यह एक ऐसा सम्मान था, जो किसी भी सेवक को प्राप्त नहीं हुआ था। विराट ने राजहंस मंगाये। जब उन हंसों ने अपने श्वेत पंख फड़फड़ाये तो इतने जोर से हर्षध्वनि हुई कि उससे घोड़े चौंक कर दो पैरों पर खड़े हो गए और महावतों के लिए हाथियों पर नियन्त्रण रखना कठिन हो गया। विजय के इन चिन्हों के बीच महाराजा ने एक बार पुनः विराट का आलिंगन किया और उस सेवक को बुलाया, जो कि राजपूतों के प्रारम्भिक शूरमा की तलवार लिये उनके साथ था। सात सौ वर्ष से यह अस्त्र महाराजाओं के खजाने में सुरक्षित रहा था। उसकी मूँठ जवाहरों से जगमगाती थी और उसकी धार पर सुनहले अक्षरों में विजय के मंगलसूत्र खुदे थे। लिखावट प्राचीन थी और उसे संत तथा पुजारी लोग ही पढ़ सकते थे। महाराजा ने तलवारों में श्रेष्ठ उस तलवार को आभार के रूप में तथा यह प्रदर्शन करने के हेतु कि आगे से वह उनके योद्धाओं का सरदार और फौजों का नायक होगा, विराट को भेंट किया।

लेकिन विराट ने सिर झुका कर कहा—"महाराज, आप अत्यन्त दयालु और कृपालु हैं। क्या मैं एक प्रार्थना कर सकता हूं?"

प्रार्थी को नतमस्तक देख महाराज बोले—"तुम्हारी प्रार्थना तुम्हारे निगाह उठा कर मेरी ओर देखने से पहले ही स्वीकार है। मांगने की देर कि मेरा आधा राज्य तुम्हारा।"

इस पर विराट ने कहा—"तो महाराज, आज्ञा दीजिए कि यह तलवार खज़ाने को वापस भेज दी जाय, क्योंकि मैंने अपने हृदय में प्रतिज्ञा कर ली है कि आयन्दा कभी भी तलवार नहीं

चलाऊंगा। अपने भाई की मैंने हत्या कर डाली है। मुझे छोड़ एकमात्र वही तो था, जिसे मेरी मां ने अपने गर्भ में धारण किया था और जिसका मां ने मेरे साथ ही लालन-पालन किया था!"

आश्चर्य से महाराज ने विराट की ओर देखा। फिर उत्तर दिया—"ऐसी हालत में तुम बिना तलवार के ही मेरे सेना के नायक हो जाओ, जिससे मुझे यह पता रहे कि मेरा राज्य दुश्मनों से सुरक्षित है, क्योंकि आज तक कभी भी इतने दुश्मनों के विरुद्ध किसी भी बहादुर व्यक्ति ने सेना का इस क़दर बुद्धिमानी के साथ संचालन नहीं किया। मेरी इस तलवार को ले लो। वह सत्ता का चिन्ह है। मेरा यह घोड़ा भी लो, जिससे सब लोगों को मालूम हो जाय कि तुम मेरे योद्धाओं के सरदार हो।"

लेकिन विराट ने विनयपूर्वक पुनः निवेदन किया—"महाराज, एक अदृश्य शक्ति ने मुझे संकेत किया है, जो मेरे हृदय में घर कर गया है। अपने भाई की मैंने हत्या कर दी। इससे मुझे सीख मिली है कि जो दूसरे को मारता है, वह अपने भाई की ही हत्या करता है। मैं युद्ध में सेना का नेतृत्व नहीं कर सकता, क्योंकि तलवार बल का प्रतीक है और बल सत्य का बैरी है। जो कोई हत्या के पाप में भाग लेता है, वह स्वयं हत्यारा है। मेरी इच्छा यह नहीं है कि मैं दूसरों में भय उत्पन्न करूं। मैं भीख मांग कर रोटी खा लेना पसन्द करूंगा, बजाय इसके कि मैं उस संकेत से इन्कार करूं, जिस पर चलने की मुझे आज्ञा हुई है। चीजें अनगिनत और अनन्त हैं और हमारा जीवन स्वल्प है। मैं अब चाहता हूं कि मेरा शेष जीवन बिना और बुराई किये व्यतीत हो।" यह सुनकर थोड़ी देर के लिए महाराजा का चेहरा फ़क हो गया और अब तक जो खुशी उस पर खेल रही थी, उसकी जगह भयातुर निस्तब्धता छा गई। बाबा-परबाबा के जमाने से लेकर आज तक कभी भी ऐसा न हुआ था कि किसी

सरदार ने लड़ाई को इस प्रकार तिलांजलि दे दी हो अथवा किसी सरदार ने महाराज की भेंट को ऐसे अस्वीकार किया हो। लेकिन महाराजा की निगाह फिर उन पवित्र राजहंसों पर गई, जिन्हें विराट राजद्रोहियों से छीन कर लाया था। विजय के इन चिन्हों को देख कर महाराजा का चेहरा चमक आया और उन्होंने कहा—"मैंने तुम्हें हमेशा दुश्मनों के साथ लड़ने में बहादुर पाया है। राज्य के नौकरों में ईमानदार व्यक्ति के रूप में तुम अपनी सानी नहीं रखते। यदि यूद्ध में मुझे तुम्हारी सेवाओं से वंचित होना ही पड़े तो दूसरे क्षेत्र में मैं तुम्हारी सेवाओं से वंचित नहीं रह सकता। तुम ईमानदार हो, बुराई को पहचानते हो और उसका उन्मूलन कर सकते हो। अतः तुम मेरे न्यायाधीशों में सबसे ऊँचे न्यायाधीश होगे और मेरे महल से न्याय का निर्णय किया करोगे, जिससे कि मेरी चहारदीवारी के भीतर सत्य का प्रसार हो और समूची भूमि में सचाई का पालन हो।"

विराट ने श्रद्धा से सिर झुका दिया। महाराजा ने उसे राजसी हाथी पर सवार होने का आदेश दिया। तब वे साथ-साथ साठ मीनारोंवाले उस नगर में प्रविष्ट हुए। उस समय ऐसी हर्षध्वनि हो रही थी, मानो तूफानी सागर में जोर की लहरें उठ कर गर्जन कर रही हों।

: २ :

अब से आगे प्रभात से लेकर सूर्यास्त तक राज प्रासाद की छत्र-छाया में अपनी आसंदी से विराट महाराज के नाम पर न्याय का निर्णय करने लगा। उसके फ़ैसले उस तुला की भांति होते थे, जिसकी कमानी इधर या उधर झुकने के पूर्व देर तक कँपकँपाती है। उसकी चमकीली आंखें गहराई के साथ अभियुक्त की आत्मा को टटोलती थीं और उसके प्रश्न अपराध की तह को

ऐसे कुरेदते थे जैसे कि बिज्जू अन्धकार-पूर्ण भू-गर्भ में अपना घर बनाने के लिए मिट्टी को कुरेदता है। उसका दण्ड कठोर होता था; लेकिन मुकदमे की सुनवाई के दिन ही वह अपना फ़ैसला कदापि न देता था। न्याय की घोषणा करने के पहले एक रात का अन्तर वह सदैव डाल लेता था। सूर्योदय के पूर्व घंटों उस मामले के पक्ष-विपक्ष में सोचता हुआ वह घर की छत पर इधर-से-उधर टहलता था और उसकी पग-ध्वनि उसके कुटुम्बी जनों को सुनाई पड़ती थी। फैसला देने से पहले वह अपना हाथ और मुंह पानी से धो डालता था, जिससे कि उसका निर्णय भावावेश से मुक्त रहे। फ़ैसला दे चुकने के बाद वह हमेशा अपराधी से पूछता था कि कहो भाई, मेरे निर्णय से तुम्हें कोई शिकायत तो नहीं है। उत्तर में शायद ही कभी किसी ने आपत्ति उठाई हो। अपराधी चुपचाप न्यायालय की सीढ़ी का चुम्बन कर नतमस्तक हो दण्ड को ऐसे स्वीकार कर लेता था, मानो वह ईश्वरप्रदत्त निर्णय हो।

विराट ने मृत्यु का दण्ड कभी किसी को नहीं दिया, अपराध कितना ही जघन्य क्यों न हो और मृत्यु का दण्ड देने के लिए चाहे जितने प्रमाण क्यों न हों अपने हाथों को रक्त-रंजित करने से वह डरता था। राजपूतों के प्राचीन निर्झर का वह पात्र, जिसके ऊपर, वार करने से पहले, जल्लाद अपराधी से झुकने के लिए कहता था और जिसके पत्थर खून के मारे काले पड़ गये थे, विराट की जजी के वर्षों में सफेद निकल आया। फिर भी उस भूमि पर अपराध-वृत्ति में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं हुई। विराट अपराधी को बन्दी-गृह में भेज देता था—उस बंदी-गृह में जो एक चट्टान को काटकर बनाया गया था अथवा वह उन्हें पहाड़ों पर भेज देता था, जहां बगीचों की दीवारों के लिए उन्हें पत्थर खोदने पड़ते थे, या नदी-तट की चावल की मिलों में,

जहां उन्हें हाथियों के साथ जुतकर चक्र घुमाने पड़ते थे। मानव-जीवन को वह सम्मान की दृष्टि से देखता था। लोग उसका आदर करते थे। कारण कि उसका कोई भी निर्णय कभी गलत सिद्ध नहीं होता था और सत्य की खोज करते-करते वह कभी थकता न था, न कभी उसके शब्दों से उसका क्रोध ही प्रदर्शित होता था। दूर-दूर से किसान लोग बैल-गाड़ियों में बैठकर अपने झगड़े सुलझवाने के लिए उसके पास आते थे। पुजारी उसकी सम्मति को शिरोधार्य करते थे और महाराजा भी उससे सलाह लेते थे। उसकी ख्याति दिन दूनी रात चौगुनी बढ़ने लगी और लोग भूल गये कि कभी उन्होंने उसकी तलवार चलाने की निपुणता की भी प्रशंसा की थी। समूचे राजपूताने में अब वह न्याय के स्रोत के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

विराट की जजी के छठे वर्ष में एक बार ऐसा हुआ कि कुछ लोग कज्ज़ार जाति के एक युवक को पकड़कर लाये। कज्ज़ार लोग पहाड़ियों के उस ओर रहते थे और दूसरे ही देवी-देवताओं की मानता करते थे। युवक के पैर लहूलुहान हो रहे थे, क्योंकि वे लोग उसे कई दिन तक लम्बा सफ़र कराकर लाये थे। उसकी हृष्ट-पुष्ट भुजाएं कसकर बांध रक्खी थीं, जिससे वह उन्हें चलाकर कोई हानि न पहुंचा दे, जिसकी सम्भावना उसकी भयंकर और चिड़चिड़ी आंखों से दृष्टिगोचर होती थी। न्यायाधीश के स्थान के निकट लाकर उन्होंने बन्दी को विराट के समक्ष घुटनों के बल बैठने के लिए बाध्य किया और फिर स्वयं साष्टाङ्ग प्रणाम करके प्रार्थना करने के लिए हाथ जोड़कर खड़े हो गये।

न्यायाधीश ने उत्सुकता-पूर्ण दृष्टि से उन अजनबियों की ओर देखा और कहा—"भाइयो, तुम कौन हो, जो इतनी दूर से चलकर मेरे पास आये हो? और यह आदमी कौन है, जिसे तुमने इस प्रकार जकड़ रक्खा है?"

उनमें जो सबसे बड़े थे, उन्हों ने हाथ जोड़कर उत्तर दिया, "भगवन्, हम लोग गड़रिये हैं। पूर्वी इलाके में रहते हैं। जिसे हम लोग आपके पास लाए हैं, वह महान् पापी है। इस दुष्ट ने इतने आदमियों की हत्या कर डाली है, जितनी कि इसके हाथो में उँगलियां भी नहीं हैं। हमारे गांव के एक आदमी से इसने कहा कि अपनी लड़की का ब्याह मेरे साथ कर दो; लेकिन उसने इन्कार कर दिया। कारण यह कि इसकी जाति के रीति-रिवाज घृणित हैं। वे लोग कुत्तों को खा जाते हैं और गायों की हत्या कर डालते हैं। इसके साथ विवाह न करके उस आदमी ने अपनी लड़की तराई-प्रदेश के एक सौदागार को ब्याह दी। इस पर गुस्से में भर कर यह कमबख्त हमारे बहुत से पशुओं को हांक ले गया और एक रात में आकर लड़की के बाप और तीन भाइयों को मार डाला। जब कभी उस घर का कोई आदमी पहाड़ी पर ढोर चराने गया कि इसने उसकी हत्या कर डाली। इस प्रकार हमारे गांव के ग्यारह आदमियों का इसने खून कर दिया। अन्त में हम लोगों ने इकट्ठे होकर इसका पीछा किया और बड़ी मुश्किल से इसे पकड़ पाया। न्यायदाता, अब हम इसे आपके पास लाये हैं कि आप इस हत्यारे से हमारे गांव का पीछा छुड़ा दें।"

विराट ने सिर उठाया और बन्धनों में जकड़े उस व्यक्ति की ओर देखकर पूछा—"क्यों भई, तुम्हारे बारे में ये लोग जो कहते हैं, वह सच है ?"

"तुम कौन हो ? महाराज हो ?"

"मैं विराट हूं। महाराज का अनुचर और न्याय का सेवक। चाहता हूं कि मैं अपने अपराधों का प्रायश्चित्त करलूं और सच को झूठ से अलग कर दूं।"

अभियुक्त क्षण भर मौन रहा। अनन्तर तीक्ष्ण दृष्टि से उसने विराट की ओर देखा।

"न्याय के इतने ऊंचे आसन पर बैठ कर तुम कैसे जान सकते हो कि सच क्या है और झूठ क्या? तुम्हारी जानकारी तो उसी से होती है न, जो लोग तुमसे आकर कहते हैं?"

विराट बोला—"इन लोगों के अभियोग के विरुद्ध तुम्हें जो कुछ कहना हो, कहो, जिससे दोनों पक्षों की बात सुन कर मुझे मालूम हो सके कि सचाई क्या है?"

बन्दी की भौंहें घृणा से तन गईं।

"मुझे इन लोगों से क्या झगड़ना! तुम कैसे जान सकते हो कि मैंने क्या किया? मैं स्वयं नहीं जानता कि गुस्सा चढ़ता है तो मेरे हाथ क्या कर बैठते हैं? उस आदमी के साथ मैंने न्याय ही किया, जिसने एक औरत रुपये के मोल बेच दी और उसके बाल-बच्चों और नौकर-चाकरों के साथ भी मैंने न्याय ही किया। ये लोग चाहते हैं तो मेरे ऊपर आरोप लगावें, मैं तो इन्हें घृणा की दृष्टि से देखता हूं और तुम्हारे फैसले को भी।"

आरोपकों ने देखा कि बन्दी इतने न्यायनिष्ठ जज के प्रति अवमानना प्रकट कर रहा है तो उनमें क्रोध का एक तूफान उठ खड़ा हुआ। पेशकार ने उसे मारने के लिए अपना कोड़ा उठाया। विराट ने उन सबको शांत रहने का इशारा किया और फिर प्रश्न पूछने लगा। आरोपक जब-जब आरोप लगाते थे, विराट बन्दी से उसका उत्तर देने के लिए कहता था। लेकिन अभियुक्त क्रोध में दांत पीसता था। केवल एक बार उसने मुंह खोला। बोला—"दूसरों के शब्दों से सचाई तुम जान कैसे सकते हो?"

मध्याह्न का सूर्य ठीक सिर पर आ चुका तब मुकद्दमे की सुनवाई खत्म हुई। फिर उठते हुए, जैसी कि उसकी टेव थी, विराट ने कहा—"अब मैं घर जा रहा हूं और फैसला कल सुनाऊंगा।"

आरोपकों ने विनय की—"स्वामी, तुम्हारी दया के लिए हम लोग सात दिन का सफ़र करके आये हैं और घर लौटने में सात दिन फिर लगेंगे। हम कल तक कैसे रुकें? हमारे ढोर-डंगर प्यासे होंगे और हमारी ज़मीन की जुताई होनी है। हमारी प्रार्थना है कि आप अपना फैसला अभी सुना दें।"

विराट फिर बैठ गया और क्षण भर के लिए विचार-मग्न हो गया। उसकी भौंहें उस व्यक्ति की भांति झुक आईं, जिसके सिर पर भारी बोझा हो। अब तक कभी भी उसे ऐसे व्यक्ति को, जिसने क्षमा की याचना न की हो अथवा उसे जो उद्धत बना रहा हो, दण्डित करने के लिए बाध्य नहीं होना पड़ा था। वह बहुत देर तक विचारों में डूबा रहा और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, उसकी चिंता भी बढ़ती गई। तब वह उठ कर झरने पर गया और ठण्डे पानी में हाथ-मुंह धोये, ताकि उसके शब्द आवेशमुक्त रहें। फिर अपने स्थान पर आसीन होकर उसने कहा—

"परमात्मा करे, मेरा फैसला न्यायपूर्ण हो। इस अभियुक्त के सिर पर, जिसने ग्यारह आत्माओं का हनन किया है, भयङ्कर पाप चढ़ा है। लगभग एक वर्ष तक आदमी का जीवन मां की कोख में अदृश्य रूप से पोषित होता है। इस कारण उन व्यक्तियों में से हर एक के लिए, जिन्हें इसने मार डाला है, एक वर्ष तक भू-गर्भ के अंधियारे में इसे छिप कर रहना होगा। और चूंकि इसके हाथों ग्यारह आदमियों का खून हुआ है, अतः हर वर्ष ग्यारह बार इसके सौ कोड़े लगेंगे, जिससे हत्या किये व्यक्तियों की संख्या के अनुसार वह पाप का प्रायश्चित्त कर सके। लेकिन उसके जीवन से उसे वंचित नहीं किया जायगा। जीवन तो परमात्मा की देन है और आदमी को भगवान की चीजों में हस्तक्षेप नहीं करना चाहिये। ईश्वर करे, मेरा यह

निर्णय, जिसे मैंने किसी व्यक्ति की आज्ञानुसार नहीं, बल्कि अपराध के प्रतीकार के लिए घोषित किया है, न्यायपूर्ण हो !"

घोषणा होते ही वादियों ने आदर-पूर्वक उसके आसन का चुम्बन किया, लेकिन बन्दी ने खामोशी ही रक्खी। विराट ने उससे कहा—"देखो, मैंने तुमसे सफ़ाई देने के लिए कहा था, ताकि हल्की सजा देने के लिए मुझे कारण मिल जाय और अपने आरोपकों के विरुद्ध तुम मुझे कुछ सहायता दे सको; लेकिन तुम्हारे होठ तो जैसे चिपक गये थे। अगर मेरे निर्णय में कहीं कोई त्रुटि रह गई हो तो परमात्मा के सामने उसके लिए तुम मुझे दोषी न ठहरा कर अपने मौन को ही दोष देना। मुझे तो इस बात की खुशी है कि मैं तुम्हारे प्रति दयावान रहा हूं।"

बन्दी ने उत्तर दिया "मुझे तुम्हारी दया नहीं चाहिये। निमिष मात्र में जो जीवन तुम छीन रहे हो, उसकी तुलना में तुम मुझे दया दे भी क्या सकते हो ?"

"मैं तुम्हारा जीवन कहां छीन रहा हूँ ?"

"ठीक, लेकिन तुम मुझसे मेरा जीवन ही छीन रहे हो और मेरे कबीले के सरदारों की अपेक्षा, जिन्हें तराई भूमि के लोग जंगली कहते हैं, कहीं अधिक निर्दयता के साथ। तुम मुझे मार क्यों नहीं डालते ? मैंने तो आदमियों को आमने-सामने मारा; लेकिन तुम तो मुझे मुर्दे की तरह अंधेरी जमीन में गाड़े दे रहे हो, जहां पड़ा-पड़ा मैं सड़ता रहूं। और ऐसा तुम क्यों कर रहे हो ? इसलिए कि तुम्हारा कायर हृदय रक्त-पात करने से डरता है और क्योंकि तुम्हारी आत्मा दुर्बल है। तुम्हारा कानून कपट है और तुम्हारे फैसले से लोगों का बलिदान होता है। तुम मेरी हत्या कर डालो। कारण कि मैंने भी तो हत्या की है।"

"मैंने तुम्हें ठीक ही सजा दी है।"

"ठीक ही ! लेकिन न्यायदाता, वह कौन-सी तराजू है,

जिससे तुम ठीक तौलते हो ? किसने तुम्हें कोड़े लगाये हैं कि, तुम जान सको कि कोड़े की मार क्या होती है ? अपनी उंगलियों पर तुम वर्षों की गिनती ऐसे गिन डालते हो, मानो दिन के उजियाले में व्यतीत हुए वर्ष में और अंधेरी धरती के भीतर कारावास में बिताये वष में कोई अन्तर ही न हो ? तुमने जेलखाना काटा है, जो जान सको कि मेरे जीवन के कितने वसंत तुम छीन रहे हो ? तुम अज्ञानी हो और तुममें ईमानदारी भी नहीं है। कारण कि जो चोट खाता है, वही जान सकता है कि चोट क्या होती है। जो चोट करता है, वह उसके कष्ट को क्या जान सकता है। जिसके बिवाई फटती है, वही उसकी पीर का अनुभव करता है। घमण्ड में भर कर तुम मानते हो कि तुमने अपराधी को दण्डित कर दिया, लेकिन तुम सबसे भयङ्कर अपराधी हो, क्योंकि जब मैंने हत्या की थी, मैं क्रोध से अभिभूत था, आवेश की गुलामी में जकड़ा था; लेकिन तुम तो ठण्डे दिमाग़ से मेरी जान ले रहे हो, जिसकी गुरुता का अनुमान तुम्हारे हाथ नहीं कर सकते और जिसका परिणाम तुमने स्वयं कभी नहीं भुगता। सिर के बल नीचे आकर गिरने से पहले ही तुम न्याय के आसन से नीचे उतर आओ। जो संयोग के आधार पर चीज़ों का निर्णय करता है वह बड़ा कमबख्त है और वह अज्ञानी भी बड़ा दुष्ट है, जो सोचता है कि वह जानता है कि न्याय क्या है। ओ अज्ञानी जज, नीचे उतर आओ और जीवित व्यक्तियों पर फैसला मत दो !"

क्रोध से बन्दी पीला पड़ गया। क्रुद्ध दर्शकगण फिर उस पर टूट पड़ने को हुए। विराट ने उन्हें रोक दिया और बन्दी की ओर से मुंह फेरकर उसने धीरे से कहा—"जो फैसला मैं दे चुका हूं, उसे रद करना अब मेरे बस की बात नहीं है। मुझे भरोसा है कि मेरा फैसला ठीक है।"

विराट जाने के लिए उठा। आदमियों ने कैदी को पकड़ लिया। बन्धनों से जकड़ा वह संघर्ष कर रहा था। लेकिन कुछ कदम चलकर विराट रुका और उसने उस अपराधी पर एक निगाह डाली। वह बड़े ही दृढ़ और क्रुद्ध नेत्रों से विराट की ओर ताक रहा था। विराट कांप उठा। उसे लगा कि वे आंखें ठीक वैसी ही हैं, जैसी कि उसके दिवंगत भाई की थीं, जिसकी अपने हाथ उसने हत्या कर डाली थी और जिसे राज-द्रोही के तम्बू में उसने मरा हुआ पाया था।

उस सध्या को विराट ने किसी से एक शब्द भी नहीं कहा। उस अजनबी की निगाह ने अग्निवाण की भांति उसकी आत्मा को बेध डाला था। सारी रात उसे नींद नहीं आई और घरवाले ताड़वृक्षों के पीछे प्रभात की अरुणिमा फैलने तक सारी रात घर की छत पर उसके इधर-उधर घूमने की ध्वनि सुनते रहे।

सूर्योदय होने पर विराट ने मन्दिर के तालाब में नित्य-कर्म से छुट्टी पाई। फिर पूर्व की ओर मुंह करके उसने प्रार्थना की। अनन्तर घर लौट कर उसने पीले रेशम की विशिष्ट पोशाक धारण की। इसके बाद कुटुम्बी-जनों का उसने अभिवादन किया। इस शिष्टाचार से वे लोग आश्चर्यचकित थे; लेकिन उन्हें प्रश्न करने का साहस नहीं हुआ। विराट अकेला राजा के महल की ओर चल दिया, जहां दिन और रात में किसी भी घड़ी जाने की उसे छूट थी। वहां पहुंच कर महाराजा के आगे नतमस्तक होकर विराट ने महाराजा की पोशाक के छोर का स्पर्श किया, जो इस बात की सूचक थी कि वह कुछ याचना करना चाहता है।

स्नेह-पूर्वक महाराज ने उसकी ओर देखकर कहा "तुमने इच्छा-पूर्वक मेरी पोशाक का स्पर्श किया है। मांग करने से पहले ही मैं तुम्हारी इच्छा को स्वीकार करता हूं।"

विराट सिर झुकाये खड़ा रहा।

"आपने अपने न्यायाधीशों का मुझे सरताज बनाया है। छः वर्ष तक मैं आपके नाम पर निर्णय देता रहा हूं। मुझे पता नहीं कि मैंने फैसले ठीक किये या नहीं। अब आप मुझे एक महीने आराम करने और शान्ति-पूर्वक रहने की आज्ञा दीजिये, जिससे मैं सत्य के मार्ग की खोज कर सकूं। मुझे यह भी अनुमति दीजिए कि मैं अपनी राय आपसे तथा दूसरों से अलग रख सकूं। मैं अन्याय-रहित कार्य करना चाहता हूं और पाप से बचकर रहना चाहता हूं।"

महाराजा अचरज से भर उठे। बोले, "आज से महीने भर तक न्याय की दृष्टि से मेरा राज्य बड़ा दीन हो जायगा। फिर भी मैं तुमसे यह नहीं पूछूंगा कि तुम किस मार्ग का अनुसरण करना चाहते हो। परमात्मा करे, तुम उस मार्ग पर चलकर सत्य को प्राप्त कर सको।"

कृतज्ञभाव से राज-सिंहासन का चुम्बन करके सिर झुकाकर विराट वहां से चल दिया।

घर आकर उसने पत्नी और बच्चों को बुलाया। बोला, "एक महीने तक तुम लोग मेरी सूरत नहीं देख सकोगे। मुझे विदाई दो और कोई पूछताछ न करो। अपने कमरों में जाकर बन्द हो जाओ, जिससे तुम में से कोई भी यह न देख सके कि घर से बाहर मैं किधर जाता हूँ। महीना पूरा न हो जाय तब तक मेरे बारे में किसी प्रकार की भी जानकारी हासिल करने की कोशिश मत करना।"

सबने चुपचाप उसके आदेश का पालन किया।

तब विराट ने काली पोशाक धारण कर भगवान की मूर्ति के समक्ष प्रार्थना की। अनन्तर ताड़पत्र पर एक लम्बा पत्र लिखा और उसे मोड़ कर रख लिया। रात होते ही सुनसान घर का त्याग कर वह उस विशाल चट्टान पर गया, जिसमें गुफाएँ और बन्दीगृह थे। वहाँ पहुँच कर उसने द्वार खटखटाया। निद्रामग्न जेलर उठा और उसने पूछा, "कौन ?"

"मैं हूँ विराट, प्रधान न्यायाधीश। मैं उस क़ैदी को देखने आया हूं, जिसे कल यहाँ लाया गया था।"

"स्वामी, उसकी कोठरी तो नीचे पाताल में है। सबसे नीचे अन्धेरे में। क्या मैं आपको वहाँ ले चलूँ?"

"मैं उस जगह को जानता हूं। मुझे चाबी दे दो और तुम सोने चले जाओ। कल दरवाज़े के बाहर तुम्हें चाबी रक्खी मिल जायगी। देखो, किसी से भी इस बात की चर्चा न करना

कि आज रात तुमने मुझे यहाँ देखा था।"

जेलर चाबी ले आया और रोशनीके लिए एक बत्ती। विराट के इशारे पर वह लौट गया और बिस्तर पर पड़ रहा। विराटने गुफ़ा का द्वार खोला और तहखाने में प्रविष्ट हुआ। एक शताब्दी पहले राजपूताने के महाराजाओं ने क़ैदियों को इसी चट्टान की गुफ़ा में बन्द करना प्रारम्भ किया था। हर रोज बंदियों को पत्थर खोद-खोद कर गुफ़ा को और गहरा करके नई कोठरियाँ बनानी पड़ती थीं, जिससे अगले दिन आने वाले बंदी वहाँ स्थान पा सकें।

विराट ने एक बार वृत्ताकार आकाश की ओर देखा। टिम-टिमाते तारे दिखायी दे रहे थे। फिर उसने द्वार बन्द कर दिया। उसके चारों ओर अन्धेरा छा गया। उस अन्धियारे में बत्ती का प्रकाश बड़ा सीमित प्रतीत होता था। पेड़ों की सरसराहट और बन्दरों की 'कें-कें' उसे अब भी सुनाई पड़ रही थी। पहली मंजिल पार करने पर पेड़ों की सरसराहट इतनी धुंधली सुनाई पड़ने लगी, मानों बहुत दूर से आ रही हो। उससे और नीचे गया तो वहाँ घोर निस्तब्धता छाई थी. मानो वह समुद्र की तह में पहुँच गया हो। सब कुछ अविचल और सर्द। पत्थरों में से नमी की गन्ध आ रही थी। ताजी मिट्टी की सुगन्ध ज़रा भी नहीं थी। वह ज्यों-ज्यों भीतर बढ़ता गया उसके पैरों की ध्वनि उस नीरवता में और भी कर्कश होती गई।

बाहरी सतह से क़ैदी की कोठरी पाँच मंजिल नीची थी। विराट अन्दर गया और उसने बत्ती ऊपर उठा कर अन्धेरे में पड़े एक ढेर को देखा, जो पल भर को हिलता-सा जान पड़ा। फिर जंजीर की खड़खड़ाहट हुई।

पृथ्वी पर पड़ी उस काया के ऊपर झुक कर विराट ने कहा, "क्यों भाई, तुम मुझे चीन्हते हो?"

"क्यों नहीं, तुम वही तो हो, जिसे लोगों ने मेरे भाग्य का

स्वामी बना दिया था और जिसने मेरे भाग्य को अपने पैरों तले कुचल डाला था।"

"मैं स्वामी नहीं, महाराज का और न्याय का चाकर हूँ। न्याय का पालन करने के लिये ही मैं यहाँ आया हूँ।"

बंदी ने अविचल और नैराश्यपूर्ण दृष्टि से न्यायाधीश की ओर देखा। बोला, "मुझसे चाहते क्या हो?"

लम्बी खामोशी के बाद विराट ने कहा, "अपने फैसले से मैंने तुम्हें चोट पहुँचाई और ठीक उसी तरह तुमने अपने कठोर शब्दों से मुझे चोट पहुँचाई है। कह नहीं सकता कि मेरा निर्णय ठीक था; लेकिन तुमने जो कुछ कहा था, उसमें सचाई थी। जिस दण्ड की अनुभूति स्वयं किसी व्यक्ति को नहीं है, उससे उसे दूसरे को दण्डित नहीं करना चाहिये। मैं अब तक अज्ञानी था। अब सीखने के लिये सहर्ष उद्यत हूं। इस अंधियारे में मैंने सैकड़ों को ही भेजा होगा। बहुतों के साथ मैंने ऐसा कठोर व्यवहार किया है कि उसकी कठोरता मैं स्वयं अनुभव नहीं कर सकता। अब मैं यहाँ सचाई की खोज में आया हूँ और चाहता हूँ कि उसे पा लूँ, जिससे मैं सब प्रकार के पापों से मुक्त हो जाऊँ।"

बन्दी खामोश रहा। उसकी जंजीर की हल्की खड़खड़ाहट के अतिरिक्त कुछ भी सुनाई नहीं दिया। विराट फिर बोला, "मैं जानना चाहता हूं कि वह कौन-सी चीज है, जिसकी वजह से मैंने तुम्हें इस कालकोठरी में डाल दिया? मैं अपने शरीर पर कोड़े की चोट अनुभव करना चाहता हूं और स्वयं महसूस करना चाहता हूँ कि जेलखाने की ज़िन्दगी कैसी होती है। एक महीने मैं तुम्हारी जगह रहूंगा, जिससे मुझे पता चल जाय कि अपने फैसलों से मैंने लोगों को कितनी पीड़ा पहुँचाई है। तत्पश्चात् मैं एक बार फिर न्यायाधीश के आसन पर बैठ कर निर्णय दूँगा। उस समय मुझे आभास रहेगा कि मेरे निर्णय में कितना बल है। इस बीच

तुम स्वतन्त्र होकर यहाँ से चले जाओ। मैं तुम्हें चाबी दे दूँगा, जिससे तुम द्वार खोल कर प्रकाश की दुनिया में पहुँच जाओ। मैं तुम्हें एक महीने की आजादी दूँगा, बशर्ते कि तुम वायदा करो कि महीना बीतने पर तुम लौट आओगे। उसके बाद इस पाताल-लोक के अन्धकार में से मुझे प्रकाश की प्राप्ति होगी।"

बन्दी मूर्तिवत् खड़ा रहा। उसकी जंजीर की खड़खड़ाहट अब सुनाई नहीं देती थी।

विराट बोला, "देखो, भगवान सबको देखते हैं। तुम क़सम खाओ कि महीने भर मौन धारे रहोगे। मैं तुम्हें चाबी और अपने कपड़े दे दूँगा। चाबी तुम जेलर के दरवाजे के बाहर छोड़ जाना और आजाद होकर चले जाना। लेकिन इस शपथ से तुम बँधे रहोगे कि ज्यों ही महीना बीते, इस चिट्ठीको महाराज के पास ले जाओ, जिससे मैं इस कारागार से मुक्त हो जाऊँ और एक बार पुनः सचाई और न्याय के साथ फैसले दे सकूँ। तुम अपने सब से बड़े इष्टदेव की सौगंध खाओ कि मेरी बात मानोगे?"

कँपकँपाती आवाज में, मानो वह पाताल से उठ कर आई हो, बन्दी ने कहा, "मैं क़सम खाता हूं।"

विराट ने उसकी हथकड़ी-बेड़ी खोल दीं और अपने कपड़े उतार डाले। बोला, "लो भाई, इन्हें पहन लो और लाओ, अपने कपड़े मुझे दे दो। देखो, अपने चेहरे को ढक लेना, जिससे जेलर समझे कि मैं हूं। मेरे बाल और दाढ़ी काट डालो, ताकि मुझे भी कोई पहचान न सके!"

थरथराते हुए अनिच्छा-पूर्वक बन्दी ने विराट के आदेश का पालन किया। विराट की निगाह ही कुछ ऐसी थी कि वह उसकी बात को टाल न सका। अनन्तर बहुत देर तक वह चुपचाप खड़ा रहा! फिर विराट के चरणों में गिर कर उसने कहा, "स्वामी, मुझे यह बर्दाश्त नहीं कि मेरी जगह तुम कष्ट पाओ। हत्या तो मैंने

की थी। मेरे हाथ लहू से लाल हो रहे हैं। तुम्हारा फैसला ठीक था।"

विराट बोला, "सुनो, उस फैसले के न्याय का न तो तुम मूल्य आंक सकते हो और न मैं ही आंक सकता हूं। लेकिन जल्दी ही मुझे प्रकाश प्राप्त होगा। जाओ और जो कसम तुमने ली है, उसे पूरा करो। पूरनमासी के दिन मेरी यह चिट्ठी महाराज को दे देना, जिससे मैं इस जेलखाने से छोड़ दिया जाऊँ। समय परिपक्व होने पर मैं अपने कृत्यों को पहचान सकूँगा और उसके बाद मेरे फैसले अन्याय से रहित होंगे। अब तुम जाओ।"

कैदी ने घुटनों टिक कर भूमि का चुम्बन किया। तत्पश्चात् अन्धेरे में द्वार बन्द होने की ध्वनि हुई। सूराख में होकर बत्ती की रोशनी एक बार पुनः दीवारों पर पड़ी और फिर रात के बाकी घण्टे निस्तब्धता में विलीन हो गये।

अगले दिन सवेरे विराट पर, जिसे किसी ने भी नहीं पह-चाना, सरे आम कोड़ों की मार पड़ी। नंगी पीठ पर जब पहला कोड़ा पड़ा तो उसके मुँह से एक चीख निकल पड़ी; लेकिन उसके बाद वह चुप रहा। उसके दाँत भिंचे थे। सत्तरवें कोड़े पर उसकी चेतना धुंधली पड़ गई और फिर उसे मरे हुए जन्तु की भाँति वहाँ से ले जाया गया।

चेत हुआ तो वह अपनी कोठरी में पड़ा था। ऐसा प्रतीत होता था, मानो वह जलते कोइले के बिस्तर पर पड़ा हो। लेकिन उसकी भौंहें ठण्डी थीं। अधखुली आंखों से उसने देखा कि जेलर की पत्नी उसके पास बैठी धीरे-धीरे उसके माथे पर पानी डाल रही है। जब विराट ने ध्यान-पूर्वक उसकी ओर देखा तो उसे पता चला कि उसकी आँखों में दया झलक रही है। शारी-रिक यातना के उस क्षण में विराट ने अनुभव किया कि कष्ट की सार्थकता इसी में है कि उससे दूसरों में करुणा का आंवि-र्भाव होता है। महिला की ओर देख कर वह मुस्कराया और अपनी पीड़ा को भूल गया।

अगले दिन उसमें इतनी सामर्थ्य पैदा हो गई कि वह अपने पैरों खड़ा हो ले और उस कोठरी में धीरे-धीरे चल-फिर सके। हर क़दम पर उसे ऐसा मालूम होता था कि उसके पैरों के नीचे एक नई दुनिया का निर्माण हो रहा है। तीसरे दिन उसके घाव भरने लगे और उसके शरीर और मस्तिष्क में बल

का संचार होने लगा। आगे अब वह निश्चल बैठा रहता था और समय की गणना छत में से पानी की टपकती बूंदों के द्वारा करता रहता था। उस काल-कोठरी की महान निस्तब्धता अनेक अल्प क्षणों में विभक्त थी, जिनके योग से दिन और रात बनते हैं और हजारों दिन-रात को पार करके हम जवानी और वृद्धावस्था को प्राप्त होते हैं। इस दरम्यान कोई भी विराट से बात करने नहीं आया और अंधेरा जैसे उसकी आत्मा में ही घर कर गया। फिर भी उसके अन्तर में स्मृतियों के अनेक निर्झर प्रवाहित होने लगे। कलकल निनाद करते उन निर्झरों ने अपने निर्मल जल से विचार-रूपी सरोवर को परिपूर्ण कर दिया, जिसमें विराट का समूचा जीवन दिखाई देने लगा। जिस चीज़ को उसने अब तक थोड़ा-थोड़ा करके अनुभव किया था, वह अब इकट्ठी होकर उसके सामने आ गई। उसका मन अब तक कभी भी इतना निर्मल नहीं हुआ था, जितना कि उस जल में प्रतिबिम्बित दुनिया को अपनी अन्तर्दृष्टि से देख कर इस समय हुआ।

दिन-प्रति-दिन विराट का दृष्टिकोण स्पष्ट से स्पष्टतर होता गया। अन्धकार में चीज़ें रूप धारण करने लगीं और उनकी आकृति उसे साफ़ आँखों के सामने दिखाई देने लगी। इसी प्रकार उसके अन्तर में भी सब-कुछ स्पष्ट हो उठा। आत्म-चिन्तन से उसे जो सुखद आनन्द प्राप्त हुआ वह स्मृतियों के मायावी आलजाल में बिना भरमाये उसके नूतन विचारों के बीच ऐसे किल्लोल करने लगा, जैसे बन्दी का हाथ उस चट्टानी गुफा की ऊँची-नीची दीवारों से क्रीड़ा करता है। उस अन्धकार और एकांत में उसे अपनी प्रकृति का ध्यान ही न रहा। अपने आप से विमुख होकर विविध रूपों में व्याप्त परमात्मा की सत्ता के प्रति उसकी जागरूकता दिन-प्रति-दिन बढ़ती गई और

अब वह अपनी इच्छा की गुलामी, अर्थात् मर-मर कर जीने और जी-जी कर मरने, से मुक्त होकर अपनी कल्पना से विनिर्मित जगत में पूर्ण स्वाधीनता के साथ विचरण करने लगा। शरीर से छुटकारा पाने के आह्लाद से उसकी हर घड़ी की चिन्ताएँ मिट गईं। उसे ऐसा भास होने लगा, मानो प्रत्येक क्षण वह अन्धकार में धरती की चट्टानी और काली जड़ों की ओर गहरा डूबता जा रहा है; लेकिन साथ ही उसमें एक नए जीवन का संचार भी हो रहा है। सम्भवतः उसका यह जीवन उस कीटाणु का जीवन था, जो आँख मूँदकर मिट्टी को कुरेदता है; या फिर शायद एक पौधे का-सा था, जो अपने तने के द्वारा ऊँचा बढ़ने का उद्योग करता है, या शायद उस शांत और निस्तब्ध चट्टान सरीखा, जिसे स्वयं अपनी आत्मा का कुछ भी ज्ञान नहीं होता।

अठारह रात विराट अपनी इच्छा और जिन्दगी की चख-चख से बरी रह कर आत्म-चिन्तन के अलौकिक रहस्य का आनन्द लेता रहा। जिस चीज को उसने प्रायश्चित्त के रूप में ग्रहण किया था, वह उसे वरदान मालूम होने लगी और वह अनुभव करने लगा कि पाप और उसका प्रतिफल ज्ञान के प्रति सतत जागरूकता के मुक़ाबिले में कुछ भी नहीं है। लेकिन उन्नीसवीं रात को एक ऐसा विचार उसके मन में उठा कि उसकी चुभन से वह फड़फड़ाकर सोते से उठ बैठा। उसे लगा मानो वह विचार भभकते तकुए की भाँति उसके दिमाग़ में घुस गया। भय से उसका शरीर कांप उठा और उसकी उँगलियाँ ऐसे थर-थर करने लगीं, जैसे हवामें पत्तियाँ कांपती हैं। वह भयावह विचार था कि कहीं वह बन्दी उसके साथ विश्वासघात न कर बैठे और पहले से ही और किसी शपथ में न बँधा हो! वह भूल गया तो? कहीं सालों तक, जब तक कि उसकी हड्डी-

पसली सूख न जाय और निरन्तर मौन से उसकी जीभ जकड़ न जाय, उसे जेल में ही न पड़ा रहने दे ! इस विचार के उदय होते ही विराट के शरीर में जीवित रहने की इच्छा जाग्रत हो उठी और उसने उन सब आवरणों को विच्छिन्न कर डाला, जो उसे अब तक ढके हुए थे। समय की धारा फिर उसकी आत्मा में प्रवाहित होने लगी और उसके साथ ही भय, आशा और भौतिक संसार की समूची उथल-पुथल उसके अन्दर पैदा हो गई। अब वह अपना ध्यान अनेक रूपों में व्याप्त सनातन परमात्मा पर केन्द्रित न रख सका। अब वह केवल अपने ही बारे में सोच सकता था। उसकी आँखें दिन का प्रकाश देखने के लिए आतुर हो उठीं। उसकी देह, जो कठोर पाषाणों के बीच अब तक सिकुड़ी पड़ी रही थी, अधिक विस्तार पाने और कूदने और भागने की शक्ति प्राप्त करने की आकांक्षा करने लगी। अपनी स्त्री, अपने बाल-बच्चों, अपने घर, अपनी सम्पत्ति तथा संसार के प्रभावशाली प्रलोभन, जिनके उपभोग के लिए पूर्ण जागरूकता तथा खून में गर्मी की आवश्यकता होती है, के विचारों से उसका मस्तिष्क भर उठा।

अब से आगे समय ने, जो कि अब तक एक निस्तब्ध तलैया के मैले-कुचैले पानी की भांति, जिसमें विविध आकृतियाँ प्रतिबिम्बित होती रहती हैं, चुपचाप पड़ा था, विराट के मस्तिष्क में बहुत बड़ा रूप धारण कर लिया और उसकी धारा इतनी तेज़ी से बहने लगी कि उसके विरुद्ध ठहरने के लिए विराट को निरन्तर संघर्ष करना पड़ा। वह चाहने लगा कि धारा उसके पैर उखाड़ दे और एक उतराते वृक्ष की भांति उसे उसकी मुक्ति के ठिकाने पर पहुंचा दे। लेकिन प्रवाह तो उसके विरुद्ध था ! प्रत्येक घड़ी जी-जान से वह धारा के विपरीत तैरने लगा। उसे ऐसा लगा मानो छत से गिरने वाली बूँदों के बीच के

समय का अन्तर अब बहुत बढ़ गया है। अपनी गुफा में वह अब धैर्यपूर्वक पड़ा नहीं रह सकता था। इस विचार से कि वह पहाड़ी आदमी उसे भूल जायगा और इस काल-कोठरी में उसे बरसों सड़ना पड़ेगा, विराट इतना अधीर हो उठा कि पिंजड़े के पक्षी की भांति वह अपनी तंग कोठरी में बराबर इधर-से-उधर चक्कर काटने लगा। वहाँ की नीरवता से अब उसका गला घुटने लगा और वह दीवारों पर गालियों और शिकायत की बौछार करने लगा। वह अपने को कोसता था और देवी-देवताओं को और महाराज को गाली देता था। अपनी लुहूलुहान उँगलियों को वह निष्ठुर चट्टान पर मारता था और सिर झुकाकर दरवाजे से लगातार टक्कर लेता था, जब तक कि बेहोश होकर गिर न जाय। होश आने पर वह फिर उठ खड़ा होता था और फिर टक्कर लेता था।

अपने वन्दी-जीवन के अठारहवें दिन से लेकर पूर्णिमा होने तक विराट अत्यन्त भयातुर रहा। खाना-पीना उसे अच्छा नहीं लगता था। कारण कि उसका शरीर चिन्ता के मारे हैरान था। विचार करना उसके लिए असम्भव हो गया था। हां, पानी की बूँदें जैसे-जैसे गिरती थीं, वह उन्हें होटों से गिनता रहता था, जिससे पहाड़-सा दिन कैसे ही कट जाय और दूसरा दिन प्रारम्भ हो। इस बीच उसे तो मालूम नहीं हुआ; लेकिन उसकी कनपटी के पास के बाल सफेद हो गये।

तीसवें दिन बाहर कुछ शोर हुआ और शांत हो गया। तत्पश्चात् सीढ़ियों पर पैरों की आहट सुनाई दी और दरवाज़ा खुला तथा प्रकाश भीतर आया। अन्धकार में आवृत विराट के आगे महाराज खड़े थे। स्नेहपूर्ण आलिंगन के साथ महाराज ने उसका अभिवादन किया और कहा, "तुम्हारी करनी मुझे मालूम हो गई है और वह हमारे बाप-दादों के इतिहासों में उल्लिखित कृतियों की अपेक्षा कहीं अधिक महान है। हमारे जीवन में वह सितारे की मानिन्द चमकेगी। आगे आओ, जिससे भगवान की कृपा से तुम प्रकाशमान हो उठो और आनन्द से पुलकित लोग एक सदाचारी और सच्चे आदमी के दर्शन कर सकें।"

विराट ने हाथ से अपनी आँखों पर छाया कर ली; क्योंकि प्रकाश की अनभ्यस्त ज्योति उसके लिए कष्टकर थी। एक शराबी की भांति डगमगाता वह उठ खड़ा हुआ और नौकरों को उसे सहारा देना पड़ा। द्वार पर जाने से पहले उसने कहा, "महाराज, आपने मुझे सदाचारी और सच्चा आदमी कहा है; लेकिन अब मैं अच्छी तरह से जानता हूँ कि जो दूसरे पर निर्णय देता है, वह अन्याय और भयङ्कर भूल करता है। इस पाताल-लोक में अब भी कष्ट-पीड़ित व्यक्ति हैं, जो कि मेरे फैसले की वजह से यहाँ पड़े हैं। अब प्रथम बार मुझे पता चला है कि उन्हें कितनी पीड़ा होती है और मुझे मालूम हुआ है कि बदला लेने का क़ानून ही अपने आप में गलत है। इन बन्दियों को मुक्त कर दीजिये

और कह दीजिए कि यहाँ से चले जायँ; क्योंकि उनका जयजय-कार मुझे लज्जित करता है।

महाराज ने संकेत किया और उनके सेवकों ने भीड़ को तितर-बितर कर दिया। एक बार पुनः शान्ति छा गई। तब महाराज ने कहा, "अब तक तुम्हारा आसन मेरे महल को जाने वाली सीढ़ियों के बुर्ज पर था; लेकिन यातनाओं की अनुभूतियों के कारण पूर्ववर्ती न्यायाधीशों की अपेक्षा तुम अधिक बुद्धिमान हो गये हो, सो अब से तुम मेरे साथ बैठोगे, जिससे मैं तुम्हारी वाणी को सुन सकूँ और तुम्हारी न्यायमत्ता से लाभ उठा सकूँ।"

आवेदन के रूप में विराट महाराज को प्रणाम करके बोले, "महाराज, मुझे न्यायाधीश के पद से मुक्त कर दीजिये। अब जब मैं यह अनुभव करने लगा हूँ कि कोई भी किसी के बारे में निर्णय देने का अधिकारी नहीं है तब सही निर्णय देना मेरे बस के बाहर है। दण्ड देना परमात्मा के हाथ की बात है, मनुष्य के हाथ की नहीं। भाग्य के मार्ग में जो भी रोड़े अटकाता है, वह अपराध करता है। मैं तो पाप-मुक्त होकर जीवन-यापन करना चाहता हूँ।"

"अच्छी बात है, ऐसा ही होगा।" महाराज ने उत्तर दिया, "मेरे प्रधान न्यायाधीश होने के बजाय तुम मेरे प्रधान सलाह-कार होगे और मेरे लिये शांतिकाल और युद्ध की समस्याओं पर विचार किया करोगे तथा कर आदि लगाने के मामलों में मुझे सलाह दोगे, जिससे मेरे सभी कार्य तुम्हारी बुद्धिमत्ता से संचालित हो सकें।"

विराट फिर महाराज को नमस्कार करके बोले, "स्वामी, मुझे कोई सत्ता न दीजिये। कारण कि सत्ता का परिणाम कर्म होता है और कौन-सा कर्म ऐसा है जो कि सही है और भाग्य के

निर्णय के अनुकूल है ? यदि मैं युद्ध की सलाह देता हूँ, तो मैं मृत्यु के बीज बोता हूँ । मेरे मुँह से जो कुछ निकलता है, उससे कर्म पैदा होता है और मेरे प्रत्येक कर्म का कुछ-न-कुछ परिणाम होता है, जिसे मैं पहले से नहीं देख सकता । केवल वही व्यक्ति न्याय-पूर्ण और नेक हो सकता है, जो सब प्रकार के कर्म से मुक्त है और अकेला है । इस एकान्तवास में बिना किसी से बोले-चाले मैं ज्ञान के जितना निकट और पाप से जितना दूर रहा हूँ उतना पहले कभी नहीं रहा । मुझे प्रसन्नतापूर्वक अपने घर पर रहने की आज्ञा दीजिये । परमात्मा की आराधना के अतिरिक्त मुझे कोई भी काम न हो और इस प्रकार मैं पाप से बचा रहूँ ।"

महाराज बोले, "तुम्हारी सेवाओं से वंचित होते मुझे दुःख तो होता है, लेकिन किसी साधु-सन्त से तर्क करने या किसी नेक और ईमानदार आदमी को उसकी इच्छानुसार चलने से रोकने का कौन दुस्साहस कर सकता है ? जैसे ठीक समझो, रहो । मेरे के लिए यही बड़े गौरव की बात होगी कि उसकी सीमा के भीतर एक ऐसा व्यक्ति निवास करता है, जो पाप-मुक्त है ।"

बन्दी-गृह के द्वार पर उन दोनों ने एक-दूसरे से बिदा ली । विराट सूर्य की धूप से चिलकती हवा की सुगन्धि का आनन्द लेता हुआ अकेला घर की ओर चला । अपना हृदय उसने कभी भी इतना हल्का अनुभव नहीं किया था जितना कि अब, जब कि वह सब प्रकारके कर्म के बंधन से छूट गया था । उसके पीछे नंगे पैरों की हल्की आवाज़ आ रही थी और जब वह पीछे मुड़ा तो देखता क्या है कि वही अपराधी चला आ रहा है, जिसका दण्ड उसने अपने ऊपर ले लिया था । उस पहाड़ी आदमी ने न्याया-धीश की पदरज मस्तक पर लगाई और सहमते हुए उल्टे पैरों लौट गया । विराट ने जबसे अपने मृत भाई की चमकीली आँखें देखी थीं तब से अब आकर पहली बार मुस्कराया और प्रसन्न हृदय से घर के भीतर प्रविष्ट हुआ ।

घर लौटने के पश्चात् विराट का समय पूर्ण आनन्द के साथ बीतने लगा। अपनी जाग्रत-अवस्था में वह परमपिता परमेश्वर से प्रार्थना करता था कि हे प्रभु, मुझे स्वर्ग के प्रकाश के ही दर्शन देना, छाया के नहीं। मुझे इस दुनिया के नाना रंग दिखाई दें और इस सुन्दर भूमिकी सुगन्धका रस प्राप्त हो तथा मैं उस मधुर संगीत का श्रवण करूँ, जिससे प्रत्येक प्रभात सजीव हो उठता है। उसे मालूम होता था कि वह जो खुली हवा में साँस लेता है और जहाँ जी में आता है, घूमता-फिरता है, वह सब परमात्मा की नवीन और महान देन है। सात्त्विक स्नेह के साथ वह अपने शरीर पर तथा अपनी स्त्री के मुलायम गात पर और बच्चों की मजबूत देह पर हाथ फेरता था और हर्ष-पूर्वक अनुभव करता था कि विभिन्न रूप में भगवान उनमें से प्रत्येक में और सब में व्याप्त हैं। जब वह देखता था कि अपने जीवन की परिधि को लाँघ कर किसी दूसरे अनजाने व्यक्ति के साथ उसने हस्तक्षेप नहीं किया और न अदृश्य भगवान के असंख्यों मूर्तिमान रूपों में से ही किसी पर आक्रमण किया तो अभिमान से उसकी आत्मा आनन्द-विभोर हो उठती थी। सबेरे से साँझ तक वह ज्ञान की पुस्तकें पढ़ता था और तरह-तरह से उपासना करता रहता था—एकान्त में चिन्तन, आत्मा के साथ तल्लीनता, दीनों के साथ उपकार सौर उत्सर्ग की प्रार्थना। वह प्रसन्न-चित्त रहता था। उसकी वाणी उसके छोटे-से-छोटे सेवक के प्रति भी मधुर रहती थी और उसके कुटुम्बी-

जन उसके प्रति अब जितने अनुरक्त थे, उतने पहले कभी नहीं थे। ज़रूरतमंदों को वह सहायता देता था और कष्ट-पीड़ितों को दिलासा। लोगों के समुदाय--के--समुदाय पीठ पीछे उसके कल्याण की कामना करते थे। अब कोई भी उसे निपुण तलवार चलाने वाला अथवा न्याय का स्रोत नहीं कहता था। कारण कि अब वह अच्छी सलाह देने वाला बन गया था। उसके पड़ौसी ही नहीं, सब लोग उसकी सलाह लेने के लिए आते थे। यद्यपि अब वह उस भूमि पर न्यायाधीश नहीं था, फिर भी दूर--दूर से लोग अपना झगड़ा निबटाने के लिए उसके पास आते थे और उसके फैसले को बिना किसी हिचकिचाहट के स्वीकार कर लेते थे। विराट को इससे खुशी होती थी। वह अनुभव करता था कि आदेश देने की अपेक्षा सलाह देना और फ़ैसला देने की अपेक्षा-बीचबिचाव करा देना कहीं अच्छा है। अब चूँकि दूसरे के भाग्य पर ज़बरदस्ती शासन करने अथवा बहुतों के भाग्य-विधाता बनने का उसके हाथ कोई अधिकार नहीं रहा था, उसे ऐसा आभास होता था कि उसका जीवन दोष-मुक्त है। इस प्रकार अपने जीवनके उस सुनहले प्रहर में वह खूब उल्लास के साथ रहता था।

तीन साल गुजरे, फिर तीन और। वे ऐसी सफ़ाई से बीत गये, जैसे सुख का दिन बात--की-बात में बीत जाता है। विराट की प्रकृति कोमल से कोमलतर होती गई। जब कोई झगड़ा निबटाने के लिए उसके पास आता था तब उसे यह समझने में बड़ी कठिनाई होती थी कि आखिर इस दुनिया में इतना संघर्ष क्यों है और लोग क्यों स्वामित्व के लिए ईर्ष्यालु बन कर एक-दूसरे का गला घोंट रहे हैं, जब कि जीवन के विस्तार के लिए इतनी जगह उनके लिए खुली पड़ी है और वे अच्छी तरह से जीवित रह कर जीवन का आनन्द ले सकते हैं! उसे किसी से ईर्ष्या नहीं

थी, न किसी को उससे। विराट का घर मानो जीवन रूपी सागर के बीच शांति के द्वीप में स्थित था, जिसे वासनाओं की लहरें या कामुकता की धाराएँ छू ही नहीं पाती थीं।

इस शांति-काल के छटवें वर्ष में एक दिन सन्ध्या को विराट सोने चला गया था कि उसे किसी की चीख़ और कोड़े पड़ने की आवाज़ सुनाई दी। अपने बिस्तर से वह उठ बैठा और उसने देखा कि उसके लड़के एक गुलाम की बुरी तरह खबर ले रहे हैं। ज़मीन पर बिठा-कर चमड़े के हंटर से उसकी इतनी ठुकाई कर रहे थे कि उसकी देह से खून बह निकला था। गुलाम ने निगाह गाड़ कर विराट की ओर देखा और एक बार फिर विराट को लगा, मानो वह अपने उसी भाई की आँखें देख रहा है, जिसकी उसने अपने हाथों हत्या कर डाली थी। जल्दी से आगे बढ़ कर उसने कोड़ा चलाते लड़के की बाँह पकड़ ली और पूछा कि आख़िर किस्सा क्या है?

लड़कोंने जो जवाब दिये उससे विराट को मालूम हुआ कि इस गुलाम का काम चट्टानी झरने से लकड़ी के डोलों में पानी भर-भर कर घर लाने का था; लेकिन यह कह कर वह कई बार देर से घर पहुँचा कि दुपहरी की धूप के मारे थक गया था। हर बार उसे दण्डित किया गया। कल और दिन की अपेक्षा उसकी अधिक मरम्मत हुई तो वह चुपचाप घर से निकल भागा। लड़कों ने घोड़ों पर उसका पीछा किया और वह नदी पार कर चुका था तब कहीं उसे पकड़ पाये। रस्सी से उन्होंने उसे एक घोड़े की जीन से बाँध लिया, जिससे कुछ घसिटता और कुछ दौड़ता वह घर आया। उसके पैर छलनी हो गये थे। अब वे उसे उसकी तथा दूसरे गुलामों की भलाई की खातिर, जो काँपते हुए उसे पिटते देख रहे थे, आदर्श दण्ड दे रहे थे।

विराट ने गुलाम की ओर देखा। उसकी आंखें ऐसे फटी

हुई थीं, जैसे जल्लाद के मृत्यु-प्रहार की प्रतीक्षा करने वाले पशु की फटी होती हैं। उसकी काली आंखों के पीछे विराट को उसी भय का अनुभव हुआ, जिसे वह एक बार स्वयं महसूस कर चुका था।

"छोड़ दो इस आदमी को।" विराट ने अपने लड़के से कहा, "अपराध की सजा इसे मिल चुकी।"

गुलाम ने स्वामी के चरणों के सामने की रज का चुम्बन किया। यह पहला अवसर था, जब पुत्र अपने पिता से रुष्ट होकर विदा हुये। विराट अपने कमरे में चला गया और उसने हाथ-मुंह धोया। ठण्डे पानी के स्पर्श से अचानक उसे ज्ञान हुआ कि वह क्या कर रहा है और उसने अनुभव किया कि चट्टान के कारागार को छोड़ने के बाद पहली बार वह निर्णायक बना है और उसने दूसरे के भाग्य में हस्तक्षेप किया है। छः वर्ष में प्रथम बार उस रात उसे नींद नहीं आई। अन्धकार में पड़े-पड़े उसने कल्पना द्वारा उस गुलाम की भयङ्कर आंखें (या वे उसी के वध किये हुए भाई की ही आंखें थीं!) देखीं और उसे अपने पुत्रों की क्रोध भरी मुद्रा दिखाई दी। वह बार-बार अपने से पूछने लगा कि क्या उसके बच्चों ने इस नौकर के साथ अन्याय नहीं किया? कर्तव्य की साधारण अवहेलना पर उसके घर के आँगन की मिट्टी खून से तर हो गई! जरा-सी चूक पर एक जीवित व्यक्ति के कोड़े लगाये गए! इस अपराध से विराट को उन कोड़ों की मार की अपेक्षा कहीं ज्यादा चोट लगी, जिन्होंने उसकी पीठ को बिच्छुओं से भी अधिक पीड़ा पहुँचाई थी। यह ठीक था कि शाम को जो दण्ड उसके सामने दिया गया था, वह किसी कुलीन को नहीं, एक गुलाम को दिया गया था, जिसका शरीर राजसी क़ानून के अनुसार उसके पैदा होने की तिथि से ही उसके स्वामी के अधिकार में था: लेकिन

क्या परमात्मा की आँखों में राजा का यह क़ानून ठीक था? क्या ईश्वर की निगाह में यह सही हो सकता है कि एक व्यक्ति का शरीर दूसरे के पूर्ण अधिकार में हो? और क्या वह व्यक्ति परमात्मा के समक्ष निर्दोष ठहराया जा सकता है, जो एक गुलाम की जिन्दगी को चोट पहुँचाये या उसे नष्ट कर दे?

विराट बिस्तर से उठा और उसने बत्ती जलाई, ताकि सन्तों के ग्रन्थों में इस सम्बन्ध में कोई आदेश ढूँढ़ निकाले। निश्चय ही वर्णों और सम्पत्तियों के कारण आदमी-आदमी के बीच उसे ग्रन्थों में भेद दिखाई दिया, लेकिन नाना प्रकार के जीवों की कृतियों में कहीं भी उसे प्रेम की मांगों की पूर्ति के सम्बन्ध में कोई अंतर नहीं मिला। ज्ञान का रस वह अधिक-से-अधिक उत्सुकता-पूर्वक प्राप्त करता गया। कारण कि उसकी आत्मा कभी भी एक समस्या के प्रति इतनी अधिक जागरूक नहीं हुई थी। लेकिन अचानक एक क्षण के लिए प्रकाश की लौ अपने स्थान से हटी और फिर बुझ गई। जब अन्धकार उसके और दीवारों के बीच छा गया तब अनायास विराट को पता चला कि जिस परिधि को उसकी आँखें अन्धेरे में ढूँढ़ रही हैं, वह उसके सुपरिचित कमरे की परिधि नहीं है, बल्कि कुछ समय पूर्व का वह कारागार है, जहाँ भयभीत होकर उसे निश्चय-पूर्वक यह पता चला था कि स्वाधीनता मनुष्य का सब से बड़ा अधिकार है और किसी को भी हक़ नहीं कि वह दूसरे को जेल में ठेल दे, चाहे वह सजा उम्र भर के लिए हो, या सिर्फ एक साल के लिए। लेकिन फिर भी विराट ने अपनी इच्छा के अदृश्य कारागार में इस गुलाम को वन्दी कर रक्खा था! अपने फैसलों से उसने उसे जकड़ रक्खा था, जिससे कि वह आज़ादी की तरफ एक क़दम भी न रख सके। ज्यों ही वह बैठ कर सोचने लगा, उसके विचार स्पष्ट होते गए। उसे लगा कि इस प्रकार विचार करने से उसकी

बुद्धि खुलती जा रही है और फिर किसी अदृश्य स्थान से प्रकाश आकर उसके अंदर प्रविष्ट हो गया। अब उसे ज्ञात हुआ कि वह अभी भी इस बात में दोषी है कि उसने अपने संगी-साथियों को अपनी इच्छा का गुलाम बना रखा है और उस कानून के जरिये उसका नाम गुलाम रख लेने दिया है, जिसकी उत्पत्ति दुर्बल मानव के द्वारा हुई है, परमात्मा के आदेश से नहीं। विराट ने झुक कर प्रार्थना की :

ओ, सहस्रों रूप वाले भगवान, मैं तुझे धन्यवाद देता हूँ कि तू अपने समस्त रूपों में से मेरे लिए दूत भेजता है कि वे मुझे अपराधों से उबार लें और तेरी इच्छा के मार्ग पर चला कर मुझे सदा तेरे निकट ले जायँ। मुझे शक्ति दो, जिससे मैं अपने अमर भाई की आंखों में उन कल्याणकारी दूतों को पहचान सकूँ। इस भाई की आत्मा निरन्तर मेरा अनुगमन करती है और मेरी आँखों से देखती है। उसके कष्टों से मैं स्वयं पीड़ित होता हूँ, जिससे मैं अपने जीवन को पवित्र बना सकूँ और निर्दोष होकर सांस ले सकूँ।

विराट का चेहरा फिर प्रसन्न हो उठा। उसकी आँखों से उदासी दूर हो गई और वह आकाश में टिमटिमाते और स्वागत करते तारों तथा सबेरे की ताजगी देने वाली हवा का आनन्द लेने के लिए रात में ही घर से निकल पड़ा। बाग़ में होता हुआ वह नदी पर पहुँचा। पूर्व में जब सूर्योदय हुआ तो वह पवित्र जलधारा में कूद पड़ा। अनन्तर अपने कुटुम्बीजनों से मिलने के लिए घर लौट आया। प्रभात की प्रार्थना के लिए वे सब इकट्ठे हो गये थे।

मधुर मुस्कान के साथ विराट ने कुटम्बीजनों का अभिवादन किया और स्त्रियों को वहाँ से चले जाने का संकेत करके अपने लड़कों से बोला, "तुम जानते हो कि बरसों से मैं सिर्फ एक ही बात की चिन्ता कर रहा हूँ। वह यह कि मैं ईमानदार और नेक आदमी बन जाऊँ और इस पृथ्वी पर पाप से बच कर ज़िन्दगी बसर करूँ। कल मेरे घर की धरती खून से तर-बतर हो गई। खून भी किस का? एक जिन्दा आदमी का! मैं चाहता हूँ कि खून बहाने के इस अपराध से मैं निर्दोष हो जाऊँ और मेरे घर की छत के नीचे जो भूल हुई है, उसका प्रायश्चित्त करूँ। जिस गुलाम को मामूली से अपराध के लिए इतनी सजा दी गई, वह इसी घड़ी से आजाद हो जायगा। जहाँ चाहे, जाय, ताकि कयामत के दिन तुम्हारे और मेरे खिलाफ ईश्वर के दरबार में वह गवाही न दे।"

लड़के चुप थे और विराट को अनुभव हुआ कि चुप रह कर वे उसे विरोध की निगाह से देख रहे हैं।

वह बोला, "तुमने कोई जवाब नहीं दिया। मैं तुम्हारी बात सुने बिना कुछ भी नहीं करना चाहता।"

"तुम एक अपराधी को आजादी देना चाहते हो, दण्डित करने की अपेक्षा इनाम देना चाहते हो।" सबसे बड़े लड़के ने कहा, "हमारे घर में बहुत से नौकर हैं। इसलिए एक का जाना हमें खलेगा नहीं। लेकिन तुम जो कुछ कर रहे हो, उसका परिणाम

अच्छा नहीं होगा। अगर तुम इस आदमी को मुक्त कर दोगे तो फिर दूसरे आदमी जाना चाहें तो उन्हें कैसे रोक कर रख सकते हो ?"

"यदि वे जाना चाहेंगे तो मैं उन्हें चला जाने दूँगा। मैं किसी का भाग्य--विधाता नहीं बनूँगा। जो भी कोई दूसरे के भाग्य का फैसला करता है, वह अपराधी है।"

"तुम तो कानून के बन्धन ढीले कर रहे हो।" दूसरे लड़के ने कहा, "यह गुलाम तो हमारे हैं, ठीक वैसे ही जैसे कि हमारी ज़मीन हमारी है और उस पर उगने वाले पेड़ और उन पेड़ों के फल सब हमारे हैं। चूँकि वे तुम्हारी सेवा करते हैं, वे तुमसे बँधे हुए हैं और तुम उनसे बँधे हो। तुम जिस चीज़ को तोड़ रहे हो वह परम्परागत है और हज़ारों वर्षों से चली आ रही है। गुलाम अपनी जिन्दगी का खुद मालिक नहीं है, बल्कि अपने मालिक का दास है।"

"परमात्मा की ओर से हमें केवल एक ही अधिकार है। वह है जीने का। वह अधिकार सभी को प्राप्त है। तुमने अपनी बात मुझे बता कर अच्छा ही किया, क्योंकि जब मैं यह सोच रहा था कि मैं अपराध से अपने को बचा रहा हूँ, मैं अन्धकार में था। इन तमाम वर्षों में मैं दूसरों की ज़िन्दगी छीनता रहा हूँ। अब अन्त में मुझे स्पष्ट दिखाई देता है कि ईमानदार आदमी कभी भी मनुष्यों को जानवरों के रूप में परिणत नहीं कर सकता। मैं सब गुलामों को मुक्त कर दूँगा, जिससे कि मैं उनके प्रति अपराध से अपने को बरी कर सकूँ।"

लड़कों की भौंहें विरोध में तन गईं। सबसे बड़े ने हठ-पूर्वक कहा, "यह तो बताओ कि धान की खेती को सूखने से बचाने के लिए कौन सिंचाई करेगा ? कौन ढोरों को ले जायगा ? तुम्हारी सनकों के कारण क्या हम लोग नौकर बन जायँ ?

जिन्दगी भर तुमने तो हाथ भी नहीं हिलाया और न कभी इस बात की चिन्ता की कि तुम्हारी जिन्दगी दूसरों की मेहनत पर चलती है। जिस बिस्तर पर तुम पड़े रहते थे, उसे दूसरे तैयार करते थे और जब तक तुम सोते थे, एक गुलाम तुम्हारी हवा करता रहता था। अब तुम अचानक सब गुलामों को निकाल बाहर किये दे रहे हो, जिससे तुम्हारे बेटे, तुम्हारे ही खून से पैदा हुए आदमी, काम में जुतें। क्या तुम चाहते हो कि बैलों के जुए निकाल कर हम उन्हें भी अलग कर दें और स्वयं हल को खींचें जिससे वे आर लगने से छुटकारा पालें? आदमियों की तरह इन मूक पशुओं को भी भगवान ने जीवन दिया है। वर्तमान व्यवस्था में दखलन्दाजी न करो, क्योंकि वह भी परमात्मा की ओर से है। पृथ्वी अनिच्छा-पूर्वक फल देती है, ताकत के जोर पर। संसार का कानून बल है और हम उससे बच नहीं सकते।"

"लेकिन मैं बचूँगा। बल शायद ही कभी ठीक होता है और मैं अपनी ज़िन्दगी सचाई के साथ बिताना चाहता हूँ।"

"सब कुछ बल के अधीन होता है, चाहे वह आदमी पर स्वामित्व हो या पशुओं पर अथवा कि इस पृथ्वी पर। जहाँ आप स्वामी हैं, वहाँ आपके लिए आवश्यक है कि आप विजेता भी हों। जिस के हाथ स्वामित्व है, वह मनुष्यों के भाग्यों के साथ बंधा है।"

"लेकिन मैं उन तमाम चीज़ों से अपने को बरी कर दूँगा, जो मुझे पाप से बाँधती हैं। इसलिए मैं तुम्हें आदेश देता हूँ कि गुलामों को छोड़ दो और ज़रूरी काम अपने हाथ करो।"

लड़कों की आँखें चमक उठीं और वे मुश्किल से अपना गुस्सा रोक सके। सबसे बड़े ने उत्तर दिया, "तुम ने कहा था कि तुम किसी भी व्यक्ति की इच्छा पर दबाव नहीं डालना

चाहते। तम अपने नौकरों को भी आज्ञा नहीं दोगे, ताकि तुम पाप के भागी न बनो, लेकिन तुम हमसे कहते हो कि यह करो, वह करो और हमारे जीवन में हस्तक्षेप करते हो। बोलो किस तरह तुम परमात्मा और आदमी की निगाहमें यह सही कर रहे हो?"

बहुत देर तक विराट खामोश रहा। जब उसने निगाह ऊपर उठाई तो देखा कि लड़कों की आँखों में लालच की लौ जल रही है। उसकी आत्मा दुःखित हो उठी। धीरे-से बोला, "तुम ने मुझे एक सबक सिखाया है। यह मेरा काम नहीं है कि मैं तुम पर किसी प्रकार का दबाव डालूँ। घर और दूसरी चीजों को तुम ले लो और जैसे मुनासिब समझो, आपस में बटवारा कर लो। इन चीजों में मेरा कोई भाग या भाग्य नहीं होगा और न उस पाप में, जो उनके द्वारा होगा। तुम ने ठीक ही कहा है कि जो शासन करता है, वह दूसरों की स्वतंत्रता का अपहरण करता है, लेकिन सब से बुरी बात तो यह कि वह स्वयं अपनी आत्मा को गुलाम बनाता है। जो पाप से बच कर रहना चाहता है, उसे घरबार के स्वामित्व और दूसरे की भाग्य-व्यवस्था से मुक्त रहना चाहिये। दूसरों की मजदूरी पर उसकी गुजर-बसर नहीं होनी चाहिये और उसे उन वस्तुओं को ग्रहण नहीं करना चाहिये, जिनके निर्माण में दूसरों ने पसीना बहाया हो। स्त्रियों के साथ भोग-विलास तथा सन्तोषजनित आलस्य से उसे दूर रहना चाहिये। केवल वही व्यक्ति, जो अकेला रहता है, परमात्मा के साथ रहता है, कर्मठ व्यक्ति को ही परमात्मा की अनुभूति होती हैं। गरीबी ही परमात्मा को पूर्णतया अनुभव करती है। मेरे लिए जरूरी है कि अपनी भूमि के निकट रहने की अपेक्षा भगवान के निकट रहूँ। कारण, मैं पाप से बच कर रहना चाहता हूँ। घरबार ले लो और शांतिपूर्वक उसका बटवारा कर लो।"

विराट मुड़ा और लड़कों को छोड़ कर चल दिया। इसके लड़के भौंचक्के-से खड़े रहे। उनका लालच पूरा हुआ, इसका उन्हें सुख तो था, लेकिन अपनी आत्मा में वे बड़े लज्जित थे।

रात होने पर विराट घर से निकल पड़ने के लिए तैयार हुआ। साथ में उसने ली एक लाठी, एक भिक्षा-पात्र, काम करने के लिए एक कुल्हाड़ी, भोजन के लिए थोड़े फल और कुछ ताड़-पत्र, जिन पर सन्तों की वाणी खुदी थी। घुटनों ऊपर कपड़े करके पत्नी-बच्चों अथवा अपने घर के किसी भी व्यक्ति से विदाई लिए बिना उसने घर छोड़ दिया। सारी रात चल कर वह उस नदी के किनारे आया, जिसमें उसने अपनी जागरूक अवस्था की भयंकर घड़ी में एक बार अपनी तलवार फेंक दी थी। घाट से उसने नदी पार की और दूसरे किनारे-किनारे धारा से ऊपर की ओर चला, जहाँ आदमी का नामोनिशान भी नहीं था और जहाँ की धरती की कभी जुताई नहीं हुई थी।

दिन निकलने पर वह एक ऐसे स्थान पर पहुँचा, जहाँ एक पुराने आम के पेड़ पर बिजली गिर गई थी और उसकी आग से जंगल का कुछ हिस्सा साफ हो गया था। यहाँ पर जल की धारा एक बड़ा मोड़ लेकर धीरे-धीरे बह रही थी और उसमें अनगिनत चिड़ियाँ निडर होकर पानी पी रही थीं। इस प्रकार सामने नदी का सुन्दर दृश्य था और पीछे पेड़ों की घनी छाया। धरती पर जगह-जगह जंगली पेड़ थे, जिनमे से कुछ बिजली की वजह से नष्ट हो गये थे। कुछ छोटे-छोटे पौधे उग रहे थे। विराट ने जंगल की इस साफ, निर्जन भूमि के बारे में सोचा और निश्चय किया कि यहीं पर अपनी झोंपड़ी बनावे। अपनी बाकी जिन्दगी को वह

अपने साथी-संगियों से दूर और पाप से मुक्त रह कर चिंतन में बिता देगा।

झोंपड़ी बनाने में उसे पाँच दिन लग गये; क्योंकि उसके हाथ काम करने के आदी नहीं थे। वह पूरी हो गई तब भी उसे हर रोज कठोर परिश्रम करना पड़ता। भोजन के लिए फलों की खोज करनी पड़ती थी। जंगल की घासपात को भी, जो कि निरन्तर उगती रहती थी, साफ रखने के लिए मेहनत की ज़रूरत थी। भूखे चीते रात को जंगल में घूमते रहते थे। उनसे रक्षा के लिए कंटीली लकड़ियों का एक बाड़ा भी जरूरी था। आदमियों का कोलाहल वहाँ कभी नहीं सुनाई दिया, न उसकी एकाग्रता ही में कभी विघ्न पड़ा। नदी के जल की भाँति शांति-पूर्वक उसके दिन कटने लगे और सतत प्रवाहित झरने की भाँति उसमें नवीन रस का संचार होने लगा।

चिड़ियों ने देखा कि आगन्तुक चुपचाप काम में लगा रहता है। उससे उन्हें भयभीत होने की जरूरत महसूस नहीं हुई और थोड़े ही दिनों मे उन्होंने झोंपड़ी की छत में अपने घोंसले बना लिए। विराट बड़े-बड़े फलों के बीज बिखेर देता था और उनके भोजन के लिए फल रख देता था। धीरे-धीरे मित्रता बढ़ती गई और वे उसके बुलाने पर ताड़ वृक्षों से फुदक कर नीचे आ जाने लगीं। विराट उनके साथ खेलने लगा और चिड़ियाँ भी बिना किसी भय के उसकी पकड़ में आ जाने लगीं। एक दिन जंगल में उसे एक छोटा-सा बन्दर जमीन पर पड़ा मिला। उसका पैर टूट गया था और वह बच्चे की तरह चिल्ला रहा था। विराट ने उसे उठा लिया और अपनी झोंपड़ी में ले आया। जब वह अच्छा हो गया तो उसे पाल लिया। बन्दर पालतू हो गया और मजे में उसकी नकलें और भक्ति-पूर्वक सेवा करने लगा। इस प्रकार विराट के चारों ओर जीवित पशु-पक्षी थे, लेकिन इस बात को

वह कभी भी नहीं भूला कि आदमियों की तरह पशुओं में भी हिंसा और बुराई के भाव मौजूद रहते हैं। वह देखता था कि किस प्रकार घड़ियाल एक दूसरे को काटते हैं और गुस्से में भर कर एक दूसरे का पीछा करते हैं, किस प्रकार नदी से चिड़ियाँ मछलियाँ ले आती हैं और किस प्रकार साँप कुन्डली भर कर चिड़ियों को हड़प कर जाते हैं! प्रलय—देवता ने दुनिया को विनाश की भयंकर जंजीर से जकड़ रक्खा है। इस नियम की सचाई को उसे स्वीकार करना ही पड़ा। फिर भी यह अच्छा ही था कि वह उन संघर्षों का दर्शक-मात्र था और उस विनाश और मुक्ति के विशाल चक्र में वह निर्दोष होकर रह रहा था।

एक वर्ष और कई महीनों तक उसने आदमी की शक्ल भी नहीं देखी। फिर एक दिन ऐसा हुआ कि एक शिकारी हाथी का पीछा करता हुआ नदी के उस स्थान पर आया, जिसके दूसरी ओर हाथी ने पानी पिया था। यहाँ उसे एक आश्चर्य-जनक दृश्य दिखाई दिया। सन्ध्या के सुनहले प्रकाश में एक सफेद दाढ़ी वाला आदमी अपनी छोटी-सी कुटिया के सामने बैठा था। चिड़ियाँ उसके सिर पर चहचहा रही थीं और एक बन्दर उसके पैरों में बैठा पत्थर से उसके लिए अखरोट तोड़ रहा था। वह आदमी पेड़ की फुनगी की ओर देख रहा था, जहाँ रंग-बिरंगे बहुत से तोते किलकिला कर रहे थे। जब उसने इशारा किया तो वे तोते एक सुनहरे बादल की भाँति उड़ कर नीचे आए और उसके हाथों पर बैठ गये। शिकारी ने सोचा कि वह किसी संत के दर्शन कर रहा है, जिसके विषय में लिखा है: "पशु-पक्षी उससे आदमी की बोली में बात करते थे और पुष्प उसके पैरों तले उगते थे। अपने होंटों से वह तारों को तोड़ सकता था और फूक मार कर चन्द्रमा को उड़ा सकता था।" वह शिकारी शहर

की ओर तेजी से चला कि लोगों को बतावे कि उसने क्या दृश्य देखा है।

अगले दिन नदी के उस पार किनारे पर उस आश्चर्य को देखने के लिए बहुत से लोग आ पहुँचे। भीड़ तेजी से बढ़ती गई और अन्त में एक आदमी ऐसा भी आया, जो विराट को पहचानता था। खबर चारों ओर फैलते-फैलते राजा के कानों में भी पहुँची, जिन्हें अपने स्वामि-भक्त सेवक के खोने का बड़ा दुःख था। महाराज ने एक नाव तैयार करने का आदेश दिया, जिसमें अट्ठाईस खेने वाले थे। दृढ़ता-पूर्वक उन्होंने पतवार चलाए और अन्त में बेड़ा विराट की झोंपड़ी के सामने आ पहुँचा। महाराज के लिए कालीन बिछा दिया गया। वे उतरे और उस तपस्वी के निकट गये। आठ महीने से विराट ने आदमी की बोली नहीं सुनी थी। मुश्किल से उसने अपने अतिथि का अभिवादन किया और प्रजा जिस प्रकार अपने शासक को प्रणाम करती है, उस प्रकार प्रणाम करना वह भूल गया। बोला, "महाराज, आपका आना कल्याणकारी हो।"

महाराज ने उसे छाती से लगा लिया।

"वर्षों से पूर्णता की ओर तुम्हारी प्रगति को मैं ध्यान-पूर्वक देख रहा हूँ और अब मैं नेकी के दुर्लभ चमत्कार को देखने आया हूँ, जिससे मुझे यह पता चल जाय कि नेक आदमी किस प्रकार रहता है!"

विराट ने सिर झुका लिया। बोला,

"मेरा समूचा ज्ञान यह है कि मैंने आदमियों के बीच रहना भुला दिया है, जिससे मैं सब पापों से बच कर रह सकूँ। एकांतवासी आदमी अपने को ही सीख दे सकता है, दूसरों को नहीं। मैं नहीं जानता कि मैं जो कुछ कर रहा हूँ, वह बुद्धिमानी है। मैं यह भी नहीं जानता कि मैं जो कुछ अनुभव कर रहा हूँ, वह

आनन्द है। मेरे पास सलाह देने या सिखाने के लिए कुछ भी नहीं है। एकान्तवासी का ज्ञान दुनिया के ज्ञान से भिन्न है। चिन्तन के नियमों में और कर्म के नियमों में बड़ा अन्तर है।"

"लेकिन यह देखने भर से ही कि एक नेक आदमी कैसे रहता है, कुछ-न-कुछ शिक्षा मिलती ही है।" महाराज ने उत्तर दिया, "तुम्हारे मुख के दर्शन करके ही मुझे बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ है। मैं और कुछ नहीं चाहता। अपने राज्य में क्या मैं तुम्हारी कोई इच्छा पूर्ण कर सकता हूँ ? अपने कुटुम्बियों को तुम कोई संदेसा देते हो ?"

"स्वामी, अब मेरा अपना कुछ भी नहीं है, या इस पृथ्वी पर सब कुछ मेरा ही है। मैं यह भूल गया हूँ कि और घरों के बीच कभी मेरा भी एक घर था, या बच्चों के बीच मेरे भी बच्चे थे। जिसका कोई घरबार नहीं, उसी की सारी दुनिया घर है। जिसने जीवन के बन्धनों को काट डाला है, उसी के हिस्से में सच्चा जीवन आया है। जो अबोध है, उसी को पूर्ण शांति है। मेरी केवल यही इच्छा हैं कि इस पृथ्वी पर मेरा जीवन पाप-मुक्त रहे।"

"अच्छा विदा ! अपनी उपासना में मेरा स्मरण कर लिया करना।"

"मैं तो परमात्मा का स्मरण करता हूँ और इस प्रकार आपका और इस पृथ्वी पर बसने वाले सबका, जो भगवान के ही अङ्ग हैं, जो उसी की सांस के द्वारा सांस लेते हैं, स्मरण करता हूँ।"

महाराज का बेड़ा जल-धारा में चला गया और फिर कई महीने बीत गये, जब कि उस तपस्वी को पुनः आदमी की बोली सुनने का अवसर मिला।

विराट की प्रसिद्धि फिर सारे देश में फैल गई। दूर-दूर के देहातों और समुद्र-तट की झोंपड़ियों में उस तपस्वी की खबर पहुँची, जिसने अपने घर और अपनी भूमि का त्याग कर दिया था कि वह चिन्तन का जीवन व्यतीत कर सके। अब उसे गुणों का चौथा नाम दिया गया अर्थात् 'एकान्तवासी सितारे' के नाम से उसकी ख्याति फैल गई। मंदिरों में पुजारी उसके त्याग की प्रशंसा करने लगे। महाराज उसकी चर्चा अपने नौकर-चाकरों में करने लगे और जब कोई न्यायाधीश अपना फैसला देते तो कहते, "परमात्मा करे, मेरे शब्द उतने ही ठीक हों, जितने विराट के, जो अब केवल भगवान के लिए जीवित रहता है और जो सारे ज्ञान से परिचित है।"

प्राय: ऐसा होता था और ज्यों-ज्यों समय बीतता गया और भी अधिक होने लगा कि लोग अपनी करनी की बुराई अनुभव कर के और अपने जीवन को निस्सार समझ कर अपना घरबार और सम्पत्ति त्याग कर विराट की तरह झोंपड़ी बनाने और भगवान की आराधना करने के लिए जंगल में चले जाते थे। संसार में स्वयं उदाहरण उपस्थित करना सर्वोत्तम चीज है। प्रत्येक शुभ कर्म से दूसरों में भला बनने की इच्छा पैदा होती है और वह इच्छा सुप्तावस्था से जाग कर तीव्र गति से काम में लग जाती है। जिनकी आँखें खुल गईं, उन्हें पता चला कि उनका जीवन कितना निस्सार है। उन्हें वह खून दिखाई देने लगा, जो उनके

हाथों में लगा था और वह पाप भी, जिसके धब्बे उनकी आत्मा पर पड़े थे। वे उठे और एकांत में चले गये। शरीर की कम-से-कम आवश्यकता भर मिल गया तो उसी से संतुष्ट होकर चिंतन में लीन हो गये। फल इकट्ठे करने के लिए जब वे बाहर निकलते और उन्हें कोई मिल जाता तो वे अभिवादन में एक शब्द भी मुँह से नहीं निकालते थे कि कहीं इससे कोई नया संबन्ध न कायम हो जाय। एक-दूसरे को देख कर वे हार्दिकता के साथ मुस्करा उठते थे और उनकी आत्माएँ शांति का अभिवादन कर देती थीं। साधारण जन इस जंगल के बारे में कहने लगे कि वहाँ तो साधू-संत बसते हैं। कोई भी शिकारी इस भय से वहाँ नहीं आता था कि हत्या करके वह उस पवित्र स्थान को कहीं कलुषित न कर दे।

एक दिन सवेरे, जब कि विराट जंगल में टहल रहा था, उसे एक संन्यासी जमीन पर निश्चल पड़ा हुआ मिला। उसे उठाने के लिए जब वह झुका तो उसे मालूम हुआ कि उसका शरीर निर्जीव है। विराट ने उस मृत साधु के नेत्र बन्द कर दिए, फिर प्रार्थना के कुछ शब्द कहे। अनंतर उस शव को जंगल से बाहर ले जाने का प्रयत्न करने लगा। उसने इरादा किया था कि उसके लिए चिता बना कर उसे जला देगा, लेकिन फलों की मामूली खुराक से विराट दुर्बल हो गया था और बोझा उसकी शक्ति से बाहर था। मदद की तलाश में उसने घाट पर से नदी पार की और निकटवर्ती ग्राम की ओर चला।

गाँव वालों ने जब उस तपस्वी को देखा जिसे उन्होंने एकांत-वास के सितारे का नाम दे रक्खा था तो अत्यन्त विनम्रता-पूर्वक वे लोग आये और पूछा कि आप क्या चाहते हैं? पता चला तो वे तुरन्त सहायता पहुँचाने के लिए तैयार होने लगे। विराट जहाँ कहीं गया, स्त्रियों ने उसका अभिवादन किया, बच्चे भौंचक्के-

से खड़े हो गये और आश्चर्य के साथ देखने लगे कि वह चुप-चाप कैसे आगे बढ़ता है। आदमी अपने-अपने घरों से निकल कर अपने उस महान अतिथि को प्रणाम करने और उसका आशीर्वाद लेने के लिए आये। विराट इस अपार जन-समूह के बीच सन्तोष की एक मुस्कराहट के साथ आगे बढ़ता गया। वह अनुभव करता था कि चूँकि अब वह किसी बन्धन में उनके साथ नहीं बँधा है, अतः उसका प्रेम उनके प्रति कितना पवित्र और कितना अधिक है।

हर जगह सबका हार्दिक अभिवादन स्वीकार करता हुआ जब वह अन्तिम झोंपड़ी पर पहुँचा तो देखता क्या है कि उसके अंदर एक स्त्री बैठी है और उसकी आँखों में, ज्यों ही उसने विराट की ओर देखा, घृणा भर आई। भय से विराट काँप उठा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि अपने बध किये हुए भाई की कठोर और उसे दोषी ठहराने वाली जिन आँखों को वह भूल चुका था, उन्हें पुनः देख रहा है। एकांतवास के इन बर्षों में उसकी आत्मा किसी से बैर करने की अनभ्यस्त हो गई थी। उसने अपने को समझाने का प्रयत्न किया कि वह उसकी निगाह का गलत अर्थ समझा है। लेकिन जब उसने पुनः देखा तो वे आँखें वैसी-की-वैसी घृणा के साथ उसे देख रही थीं। अपने को संभाल कर विराट झोंपड़ी की ओर बढ़ा। स्त्री भीतर चली गई, लेकिन भीतर अंधेरे में से उसकी आँखें जंगली चीते की जलती आंखों की भांति बड़ी भयंकरता के साथ उसकी ओर घूर रही थीं।

विराट ने साहस किया और मन-ही-मन सोचने लगा, "इस स्त्री को, जिसे मैंने पहले कभी नहीं देखा, मैं कैसे चोट पहुँचा सकता हूँ ? मेरे विरुद्ध उसमें इतनी घृणा कैसे पैदा हुई है ? कहीं-न-कहीं कुछ गलती जरूर है और मैं उसका पता चलाऊँगा।"

आगे बढ़ कर विराट ने द्वार खटखटाया। कोई उत्तर नहीं मिला। फिर भी वह अनुभव कर रहा था कि उस अपरिचित स्त्री की आँखें घृणा से भरी हैं। धीरज के साथ उसने फिर दरवाजा खटखटाया। थोड़ी देर प्रतीक्षा की और एक याचक की भाँति फिर किवाड़ों को थपथपाया। अन्त में हिचकिचाती हुई स्त्री द्वार पर आई। उसका चेहरा अब भी स्याह था और विराट के प्रति विरोध के भाव प्रदर्शित कर रहा था।

"तुम मुझसे और क्या चाहते हो?" स्त्री ने गुस्से से पूछा।

विराट ने देखा कि क्रोध से वह इतनी काँप उठी थी कि दरवाजे के खम्भे का सहारा लेकर उसे अपने को संभालना पड़ा।

फिर भी जब विराट ने उसके चेहरे को देखा तो उसका हृदय हल्का हो गया, क्योंकि उसे विश्वास हो गया कि उसने उस स्त्री को पहले कभी नहीं देखा। वह जवान थी और विराट जीवन--पथ पर बहुत आगे बढ़ चुका था। दोनों के मार्ग कभी एक--दूसरे से नहीं मिले और वह कभी भी उसे कोई दुःख नहीं पहुँचा सकता था।

"मैं तुम्हें शांति पहुँचाना चहाता हूँ, बहन।" विराट ने उत्तर दिया। "और मैं तुम से पूछता कि तुम इतनी भयंकर निगाह से मेरी ओर क्यों देखती हो? क्या मैं तुम्हारा दुश्मन हूँ? क्या मेरे द्वारा तुम्हारी कोई हानि हुई है?"

"तुमने मुझे क्या हानि पहुँचाई है!" वह घृणा के साथ मुस्कराई, "हाँ, तुम मेरा क्या बिगाड़ सकते हो! तुम ने बस थोड़ा--सा बिगाड़ किया है। मेरा घरबार भरा-पूरा था। तुम ने उसे खाली कर दिया। तुम ने मेरे प्रियतम को मुझसे छीन लिया। तुमने मेरी जिन्दगी को मौत के हवाले कर दिया। यहाँ से तुम चले जाओ, जिससे मैं तुम्हें फिर न देख पाऊँ, नहीं तो मैं अपने गुस्से को काबू में नहीं रख पाऊँगी।"

विराट ने फिर उसकी ओर देखा। उसकी आँखें इतनी क्रोध

से भरी थीं कि विराट को लगा कि वह आपे से बाहर है। विराट ने कहा, "मैं वह आदमी नहीं हूँ, जिसकी तुम कल्पना करती हो। आदमियों से मैं तो दूर रहता हूँ और मैं किसी के भी भाग्य में हस्तक्षेप नहीं करता। किसी दूसरे आदमी को भूल से तुम मुझे समझ बैठी हो।" इतना कह कर विराट वहाँ से चलने को मुड़ा।

गुस्से से स्त्री ने उसके पीछे चीत्कार किया, "मैं तुम्हें अच्छी तरह पहचानती हूँ। तुम विराट हो, जिसे लोग एकान्तवासी सितारा कहते हैं और जिसे चारों गुणों से विभूषित करके लोग जिसकी प्रशंसा करते हैं। लेकिन मैं तुम्हारी नामवरी नहीं करूँगी। मेरा मुँह तो तुम्हें उस समय तक चिल्ला-चिल्ला कर कोसता रहेगा, जब तक कि मेरी शिकायत भगवान के दरबार में नहीं पहुँच जाती। आओ और चूँकि तुम पूछते हो तो लो देखो, तुमने मेरा क्या बिगाड़ा है!"

आश्चर्य-चकित विराट की बाँह पकड़ कर स्त्री उसे घर के भीतर ले गई और दरवाजा खोल कर नीची छत के एक अन्धेरे कमरे में उसे ले जाकर खड़ा कर दिया, जहाँ चटाई पर एक निश्चल शरीर पड़ा था। विराट उसे देखने के लिए झुका और फिर काँप कर पीछे हट गया। एक मरा हुआ बालक पड़ा था—बालक जिसकी आँखें उसके अमर भाई की आँखों की भाँति उसकी ओर देख रही थीं। दुख से अधमरी स्त्री उसके पास खड़ी थी। उसने कराह कर कहा, "यह तीसरा, मेरी कोख का आखिरी, बालक था और तुमने उसकी और दूसरों की हत्या कर डाली—तुमने, जिसे लोग संत और भगवान का चाकर कहते हैं।"

प्रतिवाद में जब विराट ने मुँह खोलना चाहा तो वह फिर फूट पड़ी, "इस करघे को देखो। इस खाली तिपाई को देखो।

इसी पर बैठ कर मेरा पति हर रोज कपड़ा बुना करता था। इस देश में उसकी बराबर चतुर और कोई जुलाहा नहीं था। दूर-दूर से लोग आकर उससे कपड़े बुनवाते थे और उसकी मेहनत से हमारी जिन्दगी चलती थी। हमारे दिन चैन से कट रहे थे, क्योंकि पारातिक भला आदमी और मेहनती था। बुरी सोहबत से वह बचता था और पाजी आदमियों से दूर रहता था। उससे मेरे तीन बच्चे हुए। हमने उनकी अच्छी तरह से परवरिश की। उम्मीद थी कि बड़े होकर वे अपने पिता की तरह हो जायँगे, भले और नेक। तब एक दिन एक शिकारी आया। भगवान की दया से उसने इस गांव में पहले कभी पैर नहीं रक्खा था। उससे पारातिक को मालूम हुआ कि एक आदमी ने घरबार और सब साज-सामान छोड़ दिया है और दुनियादारी की जिन्दगी बिताते हुए भी उसने भगवान के चरणों में अपने को सौंप दिया है। शिकारी ने बताया कि अपने ही हाथों उसने अपने लिए एक झोंपड़ी बना ली है। उस दिन से पारातिक हम सब से बच-बच कर रहने लगा। शाम को वह ध्यान में लगा रहता और कभी-कभी ही बोलता। एक रात को मेरी आँख खुली तो देखती क्या हूँ कि वह मेरे पास से उठकर जंगल में चला गया है—उस जंगल में, जहां तुम यह सोच कर रहते हो कि परमात्मा का चिन्तन कर सको और जिसे सब साधू-संतों का निवास कहते हैं। लेकिन जब पारातिक ने अपने बारे में सोचा, वह हमें भूल गया और उसे यह भी ध्यान न रहा कि उसकी मेहनत पर ही हमारी गुजर-बसर होती थी। हम लोग ग़रीबी के चक्कर में आ गये। बच्चे रोटी के लिए तरसने लगे। एक-एक करके मरते गये और आज तीनों में से आख़िरी भी चल बसा। यह सब तुम्हारी करतूत है। तुम्हीं ने पारातिक को भरमाया। तुम भगवान के पास पहुँच सको, उसी का यह नतीजा है कि मेरी इस देह से पैदा हुए

तीन बच्चे मिट्टी में मिल गये। ओ पाखंडी, तुम अपना बचाव कैसे करोगे जब मैं भगवान के सामने कहूँगी कि मेरे नन्हें बच्चों ने इतना कष्ट पाया, जब कि तुम चिड़ियों का पेट भर रहे थे और दुःख से बच कर दूर रह रहे थे? तुम कैसे इस बात का प्रायश्चित्त करोगे कि तुम ललचा कर एक ईमानदार आदमी को उसके काम से, जिससे उसकी और उसके मासूम बच्चों की रोजी चलती थी, इस पागलपन के विचार से भरमा ले गये कि अपने साथी-संगियों के बीच मेहनत की जिन्दगी बिताने की बनिस्बत वह एकांत में परमात्मा के ज्यादा पास रहेगा?"

विराट भयातुर हो उठा और उसके होंठ काँपने लगे। बोला, "मैं नहीं जानता था कि मेरी देखा-देखी लोगों को ऐसा करने का प्रोत्साहन मिलेगा। जो मार्ग मैंने चुना, उस पर मैं अकेले ही चलना चाहता था।"

"ओ संत, तुम्हारा ज्ञान कहां है, अगर तुम एक ऐसी बात को भी नहीं समझ पाते, जिसे एक बालक तक जानता है। दुनिया के सारे काम भगवान के काम हैं और कोई भी आदमी अपनी इच्छा से कर्म से नहीं बच सकता और न जिम्मेदारी से ही पीछा छुड़ा सकता है। घमण्ड से तुम्हारा दिमाग तो आसमान पर पहुँच गया था, जब तुमने सोचा कि तुम अपने कर्मों के मालिक हो सकते हो और तुम दूसरों को सीख दे सकते हो। जो चीज तुम्हारे लिए अमृत थी, मेरे लिए हलाहल हो गई और तमने ही मेरे इन बच्चों को मरवा डाला।"

विराट ने कुछ देर सोचा और फिर उसकी बातों को स्वीकार करके सिर झुका लिया।

"तुम जो कहती हो, ठीक कहती हो और मैं देखता हूँ कि संतों के एकांतवास की अपेक्षा कहीं अधिक सच्चाई दुःख की एक सिसकी में है। मुझे जो सीख मिली है, वह अभागों से मिली

है और मुझे जो कुछ दीखा है उसका दर्शन दुखियों की और सदा जीवित रहने वाले मेरे भाई की निगाह ने कराया है। सचमुच मैं भगवान के सामने उतना विनम्र नहीं हो सका, जितने की मैंने कल्पना की थी, बल्कि मैं अभिमानी बना। इसका ज्ञान अब मुझे उस दुःख से हुआ है, जिसकी पीड़ा मैं इस समय अनुभव कर रहा हूँ। यह ठीक है कि जो निष्क्रिय रहता है वह भी कर्म करता है, जिसके लिए इस पृथ्वी पर वही जिम्मेदार होता है। एकांतवास करने वाला भी अपने भाइयों के बीच रहता है। मैं तुमसे क्षमा की याचना करता हूँ। जंगल से अब मैं इस आशा से लौट आऊँगा कि पारातिक भी मेरी तरह लौट कर तुम्हारी कोख में नये जीवन को जन्म दे।"

विराट एक बार फिर आगे को झुका और फिर आगे बढ़ गया। उस जाती काया को स्त्री की आँखें आश्चर्य के साथ देखने लगीं और उसके मन से क्रोध का भाव अनायास बिल्कुल दूर हो गया।

: १० :

विराट ने एक रात और अपनी कुटिया में गुजारी। एक बार फिर उसने सूर्यास्त के बाद आसमान में चमकते तारे देखे। सबेरे के समय उनका धुँधला पड़ जाना भी देखा। चिड़ियों को दावत के लिए एक बार फिर बुलाया और उन्हें प्यार किया। फिर लाठी और पात्र, जिन्हें वह वर्षों पहले अपने साथ लाया था, लेकर नगर की ओर चल दिया।

ज़रासी देर में यह खबर चारों ओर फैल गई कि जंगल में रहने वाला तपस्वी अपनी सूनी कुटिया को छोड़ कर फिर शहर में आ रहा है और लोग उस दुर्लभ और आश्चर्य-जनक दृश्य को देखने के लिए इकट्ठे होने लगे, यद्यपि उनमें से बहुतेरों का यह भय हो रहा था कि भगवान के सामने से इस आदमी का यों चला आना कहीं कोई अनिष्ट न करे! दोनों ओर भक्ति-भाव से खड़े नर-नारियों के बीच से विराट गुजरा और उसने गम्भीर मुस्कान से, जो कि प्रायः उसके होठों पर खेलती रहती थी, दर्शकों का अभिवादन करने का प्रयत्न किया, लेकिन पहली बार उसने अनुभव किया कि अब मुस्कराना उसके लिए असम्भव है। उसकी आंखें गम्भीर बनी रहीं और होठ बन्द।

अंत में वह महल में पहुँचा। मंत्रणा का समय बीत चुका था और महाराज अकेले थे। विराट अंदर गया। आगन्तुक का आलिंगन करने के लिए महाराज उठ खड़े हुए, लेकिन विराट ने उन्हें साष्टांग प्रणाम किया और याचना के रूप में उनकी पोशाक के छोर का स्पर्श किया।

महाराज ने कहा, "तुम्हारे होठों से शब्दों के निकलने के पहले ही मैं तुम्हारी प्रार्थना को स्वीकार करता हूँ। मेरे लिए यह गौरव की बात है कि मेरे पास एक पावन पुरुष की सेवा और साधू की सहायता करने के साधन हैं।"

"मुझे साधू मत कहिए।" विराट ने उत्तर दिया, "क्योंकि मैंने सही रास्ते का अनुसरण नहीं किया। अब तक मैं एक चक्र में भटक रहा था और अब मैं एक याचक के रूप में आपके सामने खड़ा हूँ। मैं पाप से छुटकारा चाहता था और इसके लिए मैं सब तरह के कर्म से बचा, लेकिन मैं भ्रम में फँस गया था, जिसका जाल आदमियों को फँसाने के लिए सब जगह फैला है।"

"मैं तुम्हारी बात का यकीन नहीं कर सकता।" महाराज ने कहा, "आदमियों की संगति से तो तुम बचे रहे, फिर उन्हें हानि कैसे पहुँचा सकते थे और जब तुम्हारा जीवन भगवान की सेवा के लिए समर्पित था तो तुम पाप कैसे कर सकते थे ?"

"मैंने जान-बूझ कर भूल नहीं की। मैं पाप से दूर भाग गया। लेकिन हमारे पैर तो धरती से बँधे हैं और हमारे कर्म सनातन नियमों के बंधन में जकड़े हैं। निष्कर्म स्वयं में कर्म है। अपने उस अमर भाई की आँखों से मैं बच नहीं सका, जिनका हमारे कार्यों पर हमारी इच्छा के विरुद्ध भी प्रभाव पड़ता है, चाहे वे कार्य भले हों या बुरे। लेकिन मैंने तो एक बार नहीं अनेक बार अपराध किया है, क्योंकि मैं परमात्मा के सामने भागा और लोगों की सेवा करने से इन्कार कर दिया। मैं तो निकम्मा था, क्योंकि मैंने केवल अपने ही जीवन का पोषण किया और किसी की सेवा नहीं की। अब मैं पुनः सेवा करना चाहता हूँ।"

"विराट, तुम्हारे शब्द मुझे बड़े अजीब-से लगते हैं और मेरी समझ से परे हैं। मुझे यह बताओ कि तुम चाहते क्या हो, जिसकी कि मैं पूर्ति करूँ ?"

"अपनी इच्छा को अब में स्वतन्त्र नहीं रखना चाहता। स्वतन्त्र आदमी स्वतन्त्र नहीं है और जो निष्क्रिय है, वह पाप से नहीं बच पाता। जो सेवा करता है, जो अपनी इच्छा को अपने हाथ नहीं रखता, जो अपनी सारी शक्ति काम में लगाये रखता है और जो बिना सवाल किये कर्म में लीन रहता है, वही स्वतन्त्र है। कार्य में जुटे रहना हमारा धर्म है, उसका आदि और उसका अन्त, उसका कारण और प्रभाव, परमात्मा के अधीन है। मेरी जो इच्छा है, उससे मुझे मुक्त कर दीजिये, क्योंकि सब जगह अपनी इच्छा चलाने से अव्यवस्था पैदा होती है। पूरी तौर पर सेवा करना ही बुद्धिमानी है।"

"तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आ सकती। तुम कहते हो कि मुझे स्वतन्त्र कर दो और साथ ही और उसी क्षण कहते हो कि मुझे काम दो। इससे तो यही अर्थ निकलता है कि वही आदमी स्वतन्त्र है, जो दूसरों की सेवा करता है, जब कि वह आदमी, जो कि सेवा कराता है स्वतन्त्र नहीं है। यह बात मेरी समझ से बाहर है।"

"महाराज, यह ठीक ही है कि आप अपने हृदय में इस बात को नहीं समझ सकते। यदि आप समझ जायँ तो फिर आप महाराज कैसे रह सकते हैं और किस प्रकार दूसरों को आज्ञा दे सकते हैं!"

क्रोध से महाराज का चेहरा स्याह पड़ गया। बोले "तो तुम्हारे कहने का मतलब यह है कि परमात्मा की निगाह में दास की अपेक्षा महाराज छोटी चीज है?"

"परमात्मा की निगाह में कोई किसी से छोटा नहीं है और

न-कोई किसी से बड़ा है। जो सेवा करता है और बिना सवाल किए अपनी इच्छा को समर्पित कर देता है, वही जिम्मेदारी से अपने को मुक्त कर लेता है और परमात्मा को उसे सौंप देता है। लेकिन जो इच्छा करता है और सोचता है कि अपने ज्ञान से वह विरोध को जीत लेगा वह लालच के चँगुल में फंस जाता है और पाप करने लगता है।"

महाराजा का चेहरा और भी स्याह हो गया। बोले "तब सब सेवाएँ एक--सी हैं और परमात्मा और आदमी की निगाह में छोटी--बड़ी सेवाएँ कोई नहीं है?"

"यह हो सकता है कि आदमी की निगाह में एक सेवा दूसरी से बड़ी दिखाई दे, लेकिन परमात्मा की निगाह में सब सेवाएँ समान हैं।"

महाराज विराट की ओर देर तक रंजीदा होकर देखते रहे। उनके अभिमान को भारी धक्का लगा। जब उन्होंने उस थके चेहरे और झुर्रियों भरे माथे पर लहराते सफेद बालों को एक बार फिर देखा तो उन्हें ऐसा लगा कि यह बुड्ढा आदमी सठिया गया है। इस बात की परीक्षा करने के लिए उन्होंने मजाक में पूछा, "तुम मेरे महल के कुत्तों का संरक्षक बनना पसन्द करोगे?"

बिराट ने सिर झुकाया और कृतज्ञता प्रकाशन के लिए सिंहासन का चुम्बन किया।

उस दिन से वह बूढ़ा व्यक्ति, जिसकी देश भर में चार गुणों के कारण ख्याति थी, महल के निकट कुत्ते घर के कुत्तों का संरक्षक होकर नौकर-चाकरों की कोठरियों में रहने लगा। उसके बेटे उसके कारण लज्जित थे। जब उन्हें उसके ठिकाने के पास से होकर निकलना होता तो वे लम्बा चक्कर काट कर जाते क्योंकि वे उसके सामने से बचना चाहते थे और दूसरों के आगे यह स्वीकार नहीं करना चाहते थे कि वह उनका पिता है। पुजारी उसे निकम्मा समझ कर विमुख हो गये। विराट वहाँ एक नौकर के रूप में बसने के लिए आया था और कुत्तों की डोरी पकड़ कर उन्हें घुमाने ले जाता था। कुछ दिन तक सामान्य जन उस बुड्ढे को, जो कभी महाराज का खास आदमी रहा था, देख कर खड़े हो जाते थे और टकटकी लगा कर उसकी ओर निहारते थे, लेकिन विराट इन दर्शकों की परवा नहीं करता था। इसलिए थोड़े समय में वे भी उदासीन हो गये और विराट के बारे में उन्होंने सोचना ही छोड़ दिया।

विराट ईमानदारी के साथ सबेरे से लेकर शाम तक काम में जुटा रहता कुत्तों के पट्टों को धोता और लबादों को साफ करता। उनके लिए भोजन लाता और उनके आराम करने के लिए जगह ठीक करता। उनका पेशाब और टट्टी साफ करता। कुछ ही दिनों में महल के और लोगों की अपेक्षा कुत्ते उसे कहीं अधिक प्रेम करने लगे। इससे उसके

हृदय को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। उसका वृद्ध और झुर्रियों से भरा मुँह, जो बहुत कम बोलता था, कुत्तों को प्रसन्न देख कर मुस्करा उठता था। कई वर्ष इसी प्रकार आनन्द-पूर्वक बीते। उनमें कोई विशेष घटना नहीं हुई। इस बीच महाराज की मृत्यु हो गई। दूसरा नया राजा गद्दी पर बैठा, जो विराट को पहचानता भी नहीं था और जिसने एक बार विराट के एक छड़ी जमा दी, क्योंकि जब वह जा रहा था, एक कुत्ता उसे देख कर भौंक उठा था। एक दिन वह भी आया जब कि विराट के सब साथी--संगी उसे भूल गये।

जब विराट की जीवन--यात्रा समाप्त हुई और उसका शव नौकर-चाकरों की स्मशान--भूमि में जलाया गया तो उसकी याद करने वाला उस समय कोई भी नहीं था। यह वह आदमी था, जिसकी ख्याति सारे देश में व्याप्त थी और जिसकी चार गुणों के लिए सर्वत्र प्रशंसा होती थी! उसके बेटे अलग रहे और कोई भी पुजारी अन्त्येष्टि-संस्कार कराने नहीं आया। दो दिन और दो रात कुत्ते बेशक भौंके, लेकिन वे भी अपने स्वामी को, उस विराट को, भूल गये, जिसके नाम का विजेताओं के इतिहासों में कोई उल्लेख नहीं है और न सन्तों के ग्रन्थों में ही कहीं एक शब्द देखने में आता है।

"विराट, तुम्हारे शब्द मुझे बड़े अजीब-से लगते हैं और मेरी समझ से परे हैं। मुझे यह बताओ कि तुम चाहते क्या हो, जिसकी कि मैं पूर्ति करूँ?"

"अपनी इच्छा को अब मैं स्वतन्त्र नहीं रखना चाहता। स्वतन्त्र आदमी स्वतन्त्र नहीं है और जो निष्क्रिय है, वह पाप से नहीं बच पाता। जो सेवा करता है, जो अपनी इच्छा को अपने हाथ नहीं रखता, जो अपनी सारी शक्ति काम में लगाये रखता है और जो बिना सवाल किये कर्म में लीन रहता है, वही स्वतन्त्र है। कार्य में जुटे रहना हमारा धर्म है, उसका आदि और उसका अन्त, उसका कारण और प्रभाव, परमात्मा के अधीन है। मेरी जो इच्छा है, उससे मुझे मुक्त कर दीजिये, क्योंकि सब जगह अपनी इच्छा चलाने से अव्यवस्था पैदा होती है। पूरी तौर पर सेवा करना ही बुद्धिमानी है।"

"तुम्हारी बात मेरी समझ में नहीं आ सकती। तुम कहते हो कि मुझे स्वतन्त्र कर दो और साथ ही और उसी क्षण कहते हो कि मुझे काम दो। इससे तो यही अर्थ निकलता है कि वही आदमी स्वतन्त्र है, जो दूसरों की सेवा करता है, जब कि वह आदमी, जो कि सेवा कराता है स्वतन्त्र नहीं है। यह बात मेरी समझ से बाहर है।"

"महाराज, यह ठीक ही है कि आप अपने हृदय में इस बात को नहीं समझ सकते। यदि आप समझ जायँ तो फिर आप महाराज कैसे रह सकते हैं और किस प्रकार दूसरों को आज्ञा दे सकते हैं!"

क्रोध से महाराज का चेहरा स्याह पड़ गया। बोले "तो तुम्हारे कहने का मतलब यह है कि परमात्मा की निगाह में दास की अपेक्षा महाराज छोटी चीज है?"

"परमात्मा की निगाह में कोई किसी से छोटा नहीं है और

कोई किसी से बड़ा है। जो सेवा करता है और बिना सवाल किए अपनी इच्छा को समर्पित कर देता है, वही जिम्मेदारी से अपने को मुक्त कर लेता है और परमात्मा को उसे सौंप देता है। लेकिन जो इच्छा करता है और सोचता है कि अपने ज्ञान से वह विरोध को जीत लेगा वह लालच के चँगुल में फंस जाता है और पाप करने लगता है।"

महाराजा का चेहरा और भी स्याह हो गया। बोले "तब सब सेवाएँ एक--सी हैं और परमात्मा और आदमी की निगाह में छोटी--बड़ी सेवाएँ कोई नहीं है?"

"यह हो सकता है कि आदमी की निगाह में एक सेवा दूसरी से बड़ी दिखाई दे, लेकिन परमात्मा की निगाह में सब सेवाएँ समान हैं।"

महाराज बिराट की ओर देर तक रंजीदा होकर देखते रहे। उनके अभिमान को भारी धक्का लगा। जब उन्होंने उस थके चेहरे और झुर्रियों भरे माथे पर लहराते सफेद बालों को एक बार फिर देखा तो उन्हें ऐसा लगा कि यह बुड्ढा आदमी सठिया गया है। इस बात की परीक्षा करने के लिए उन्होंने मजाक में पूछा, "तुम मेरे महल के कुत्तों का संरक्षक बनना पसन्द करोगे?"

बिराट ने सिर झुकाया और कृतज्ञता प्रकाशन के लिए सिंहासन का चुम्बन किया।

उस दिन से वह बूढ़ा व्यक्ति, जिसकी देश भर में चार गुणों के कारण ख्याति थी, महल के निकट कुत्ते घर के कुत्तों का संरक्षक होकर नौकर-चाकरों की कोठरियों में रहने लगा। उसके बेटे उसके कारण लज्जित थे। जब उन्हें उसके ठिकाने के पास से होकर निकलना होता तो वे लम्बा चक्कर काट कर जाते क्योंकि वे उसके सामने से बचना चाहते थे और दूसरों के आगे यह स्वीकार नहीं करना चाहते थे कि वह उनका पिता है। पुजारी उसे निकम्मा समझ कर विमुख हो गये। विराट वहाँ एक नौकर के रूप में बसने के लिए आया था और कुत्तों की डोरी पकड़ कर उन्हें घुमाने ले जाता था। कुछ दिन तक सामान्य जन उस बुड्ढे को, जो कभी महाराज का खास आदमी रहा था, देख कर खड़े हो जाते थे और टकटकी लगा कर उसकी ओर निहारते थे, लेकिन विराट इन दर्शकों की परवा नहीं करता था। इसलिए थोड़े समय में वे भी उदासीन हो गये और विराट के बारे में उन्होंने सोचना ही छोड़ दिया।

विराट ईमानदारी के साथ सबेरे से लेकर शाम तक काम में जुटा रहता कुत्तों के पट्टों को धोता और लबादों को साफ करता। उनके लिए भोजन लाता और उनके आराम करने के लिए जगह ठीक करता। उनका पेशाब और टट्टी साफ करता। कुछ ही दिनों में महल के और लोगों की अपेक्षा कुत्ते उसे कहीं अधिक प्रेम करने लगे। इससे उसके

हृदय को बड़ा आनन्द प्राप्त हुआ। उसका वृद्ध और झुर्रियों से भरा मुँह, जो बहुत कम बोलता था, कुत्तों को प्रसन्न देख कर मुस्करा उठता था। कई वर्ष इसी प्रकार आनन्द-पूर्वक बीते। उनमें कोई विशेष घटना नहीं हुई। इस बीच महाराज की मृत्यु हो गई। दूसरा नया राजा गद्दी पर बैठा, जो विराट को पहचानता भी नहीं था और जिसने एक बार विराट के एक छड़ी जमा दी, क्योंकि जब वह जा रहा था, एक कुत्ता उसे देख कर भौंक उठा था। एक दिन वह भी आया जब कि विराट के सब साथी--संगी उसे भूल गये।

जब विराट की जीवन--यात्रा समाप्त हुई और उसका शव नौकर-चाकरों की स्मशान--भूमि में जलाया गया तो उसकी याद करने वाला उस समय कोई भी नहीं था। यह वह आदमी था, जिसकी ख्याति सारे देश में व्याप्त थी और जिसकी चार गुणों के लिए सर्वत्र प्रशंसा होती थी! उसके बेटे अलग रहे और कोई भी पुजारी अन्त्येष्टि-संस्कार कराने नहीं आया। दो दिन और दो रात कुत्ते बेशक भौंके, लेकिन वे भी अपने स्वामी को, उस विराट, को, भूल गये, जिसके नाम का विजेताओं के इतिहासों में कोई उल्लेख नहीं है और न सन्तों के ग्रन्थों में ही कहीं एक शब्द देखने में आता है।